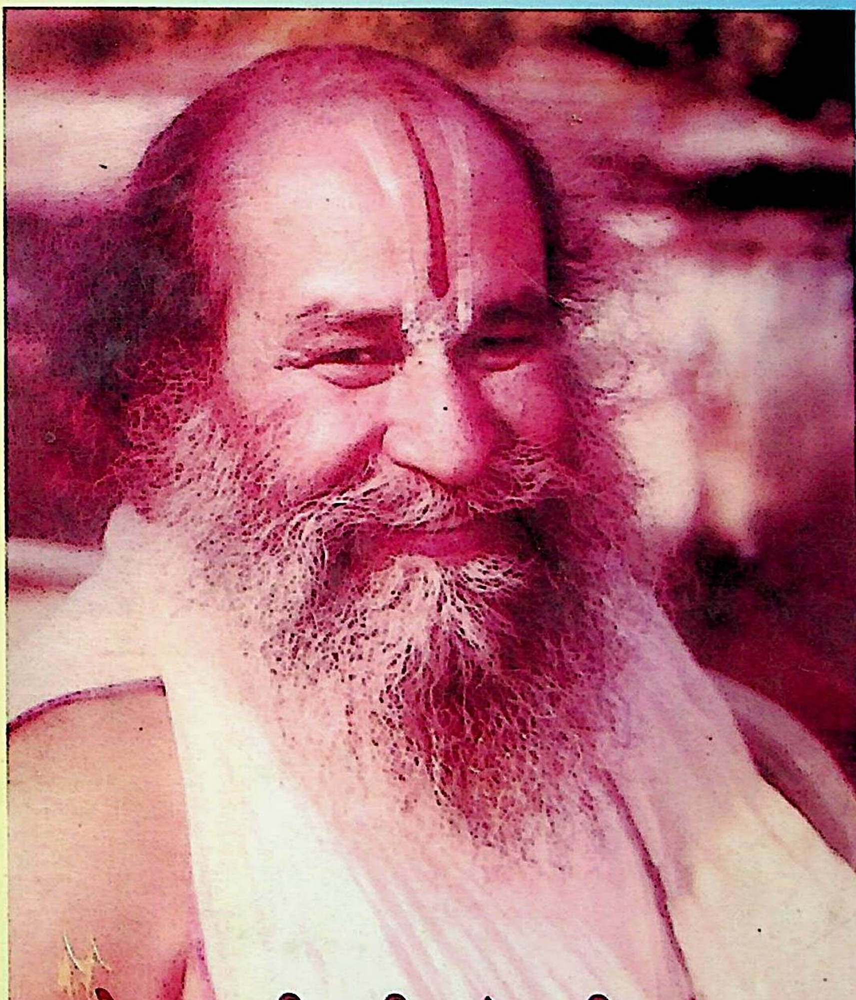
संत समाज के कलश-पुरुष



साकेतवासी श्री पंजाबी भगवान

स्मृति-ग्रन्थ



श्री महाराज जी (पंजाबी भगवान)
के उत्तराधिकारी शिष्य
महन्त श्री राजकुमार दास जी
श्री राम जानकी मठ, अस्सी घाट
वाराणसी, उत्तर प्रदेश
Ph. : 09415223285
0542-2313226

on.

।। ॐ श्रीगुरु प्रसाद ।।

सप्रेम
अर्पित :-

डा. रामगोपालाचार्य
२३-२-२००६

सन्त समाज के कलश-पुरुष

साकेतवासी श्री पंजाबी भगवान

स्मृति-ग्रन्थ

सम्पादक

डॉ० महानन्द झा

वरिष्ठ व्याख्याता-नव्य न्याय

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठ

(मानित विश्वविद्यालय)

कुतुबसांस्थानिक क्षेत्र

नई दिल्ली-110016

अभिषेक प्रकाशन

दिल्ली (भारत)

प्रकाशक :

रमन चौधरी
अभिषेक प्रकाशन
5824/7, न्यू चन्द्रावल (शिव मंदिर के सामने),
जवाहर नगर, दिल्ली-110007

वितरक :

विजय कुमार गुप्ता
विक्की इंटरनेशनल
51 नरसिंह अपार्टमेन्ट, महमूरगंज, वाराणसी

सम्पादक : डॉ. महानन्द झा (नव्यन्यायाचार्य, पी-एच.डी.)

प्रथम संस्करण : 2007

मूल्य : सप्रेम भेंट

अक्षर संयोजक :

ए-वन ग्राफिक्स
5824, न्यू चन्द्रावल (शिव मंदिर के सामने),
जवाहर नगर, दिल्ली-110007

मुद्रक :

आर. आर. प्रिण्टर्स, दिल्ली

समर्पण

जिनके हृदय कुञ्ज में

श्री भगवान् की मधुर स्मृतियों के

अगणित दीप सदा जलते रहे हैं

उन ही

साकेतवासी *श्री पंजाबी भगवान जी महाराज* की

चरण पादुका में

सन्त-भक्त के भाव-विचार-संस्मरण और

भावाञ्जलियों के विनम्र स्मृति-दीपों

से आलोकित यह

स्मृति-ग्रन्थ

सादर समर्पित है।

—सम्पादक एवं प्रकाशक

दो शब्द

भारत के महानतम सन्तों की शृंखला में परम पूज्य साकेतवासी सन्त शिरोमणि श्री श्री 1008 श्री पंजाबी भगवान जी महाराज अन्यतम थे। उनकी महिमा अपार थी, उनका वर्णन करना किसी के लिए सम्भव नहीं है। उनके मानवीय गुण इतने अनन्त थे कि उनके आकलन की कल्पना नहीं की जा सकती है।

शिवमहिम्न स्तोत्र के रचयिता पुष्पदन्त के शब्दों में यह कहा जा सकता है—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।।

गुणों की अनन्तता बराबर बनी रहेगी। ऐसी स्थिति में महाराज श्री के गुणों की महिमा, उनकी साधुताजन्य उपलब्धियों के सम्बन्ध में तथा उनके व्यापक एवं बृहत्तम स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ कहने, सुनने, लिखने का प्रयास करना विडम्बना मात्र है परन्तु यह होने पर भी मनुष्य मानता नहीं। अपनी बुद्धि के अनुसार इन बातों के लिए प्रयत्न करता ही है।

भगवान् को जगत् पिता परमेश्वर को सम्पूर्ण रूप से कौन जान सकता है? किसी ऋषि, मुनि, ब्रह्मर्षि में क्या ऐसी क्षमता है जिससे उनकी प्रभुता, महत्ता, विशालता तथा अनन्तरूपता का वर्णन हो सके फिर भी लोगों ने अपनी क्षमता के अनुसार बहुत कुछ कहा है, ग्रन्थ लिखे हैं, शास्त्रोक्त विवेचनाएँ की हैं। जब अपौरुषेय तथा परमेश्वर की प्रत्यक्ष वाणी वेद "नेति नेति" मात्र ही उस सच्चिदानन्द के बारे में कह पाते हैं तो फिर दूसरा उनके बारे में क्या कह सकता है? यह जानते हुए भी मनुष्य भगवान् के बारे में कुछ न कुछ कहकर अपने मन, वचन और कर्म को पवित्र करना चाहता है।

पूज्य महाराज श्री के सम्बन्ध में भी यही बात घटित होती है। इतना तो सम्भव ही है कि उनके विषय में जिन्हें जो जानकारी है वे उन्हें प्रकट करें। इसका फल यह होगा कि भक्त एवं सन्त समाज महाराज श्री के विषय में जिन बातों को स्वयं नहीं जान सका है, उन्हें जान सकेगा और दूसरों को स्वयं अर्जित अपनी जानकारी का लाभ दे सकेगा।

इस दृष्टि से महाराज श्री के उत्तराधिकारी शिष्य श्री राजकुमार दास जी ने **"संत समाज के कलशपुरुष-श्री पंजाबी भगवान स्मृतिग्रन्थ"** नामक ग्रन्थ प्रकाशित कराने का निश्चय किया। तदनुसार विभिन्न भक्तों से श्री महाराज के सम्बन्ध में अपनी अनुभूतियाँ मँगाई गईं जिससे उनके विषय में कुछ परिचय प्राप्त हो सके।

यह बताते हुए अपार प्रसन्नता हो रही है कि पूज्य महाराज श्री के आशीर्वाद की शक्ति पर प्रथमतः विद्यमान आस्था और भी बलवती हो रही है कि प्रस्तुत ग्रन्थ उन्हीं के दिव्य आशीर्वाद से प्रकाशित होकर सन्तों एवं भक्तजनोंके समक्ष प्रस्तुत होने जा रहा है।

इस ग्रन्थ में कुल छः खण्ड हैं—अर्चना, आचार, भक्ति, उपदेशामृत, प्रेरक प्रसङ्ग एवं भावाञ्जलि। प्रथम खण्ड "अर्चना" में महाराज श्री की वन्दना के साथ सन्तों एवं भक्तों की अनुभूतियाँ संकलित हैं।

दूसरा "आचार खण्ड" है। आचार के सम्बन्ध में समय-समय पर महाराज श्री ने जो बातें कही हैं उन सबका उल्लेख करते हुए शास्त्रीय प्रमाणों के द्वारा पुष्ट किया गया है। सर्वसाधारण के कल्याण के लिए महाराज श्री का परमावश्यक उपदेश है कि मनुष्य को सर्वप्रथम आचारनिष्ठ एवं व्यवहार कुशल होना चाहिए। "आचारः प्रथमो धर्मः" और "आचारप्रभवो धर्मः" इन दो मान्यताओं का महाराज जी की दृष्टि में अत्यधिक महत्त्व था।

तीसरा "भक्ति खण्ड" है। इसमें महाराज श्री के सूत्ररूप में दिए गये उपदेशों के आधार पर भक्ति की विशद व्याख्या की गई है। भक्ति का स्वरूप, उसके साधन के रूप में विभाग आदि का मनोरम वर्णन है।

चौथा "उपदेशामृत खण्ड" है। इसमें महाराज श्री के उन उपदेशों का संग्रह है जो उनके द्वारा चित्रकूट, वाराणसी, नाँदी एवं भक्तों के यहाँ अनेक स्थानों पर समय-समय पर दिए गये हैं। ये वास्तव में अमृत है।

पाँचवाँ खण्ड "प्रेरक प्रसङ्ग" है। इस खण्ड में श्री महाराज जी की बोध कथाएँ हैं जो श्री महाराज जी कभी-कभी सुनाने की कृपा की थीं। उन कथाओं में सन्त-महात्माओं के चरित्र का वर्णन है जो अत्यन्त बोधप्रद हैं जिससे आचार-व्यवहार, धर्म, भक्ति आदि का रहस्य बोध होता है। इस खण्ड के अध्ययन से मनुष्य को विशिष्ट बोध की प्राप्ति होगी और उसे चारित्रिक प्रेरणा मिलेगी। छठा खण्ड "भावाञ्जलि" है जिसमें महाराज जी के सम्बन्ध में संतों, भक्तों ने अपने भावों को अर्घ्य रूप में निवेदित किये हैं।।

प्रस्तुत ग्रन्थ में महाराज श्री के विभिन्न स्थानों की विभिन्न भाव मुद्राओं के चित्रों का भी समावेश किया गया है जिससे सन्त एवं भक्त हृदय पर उनके दिव्य दर्शन की अनिर्वचनीय अनुभूति सदा ही होती रहेगी। इस ग्रन्थ के सन्दर्भ में कुछ संक्षिप्त बातें इस प्रस्तावना में कही गयी है इस के समग्र अध्ययन से पता चलेगा कि महाराज श्री के शब्द साधारण शब्द नहीं है अपितु ऐसे दिव्य अंजन हैं जिनसे उनके आँखों की ज्योति बढ़ जाती है। अन्त में एक बात और-

हिन्दी के मूर्धन्य छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने सत्य ही लिखा था कि-

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप वही होगी कविता अनजान।।

इसका सार यह है कि कविता घनीभूत दुःख से जन्म लेती है। ०6 मार्च 2006 को महाराज श्री का पाञ्चभौतिक शरीर को गंगा जी में जल समाधि देने के लिए उनके शिष्य, भक्त, सन्त एवं काशीवासी प्रस्थित हो रहे थे। प्रत्येक लोगों के मन की विचित्र गति थी, अनेक कल्पनाएँ हो रही थीं, अनेक विचार उत्पन्न हो रहे थे, अनेक स्मृतियाँ जाग रही थी। मानो भगवान् और भक्ति का विछोह हो रहा हो, भक्ति से भगवान दूर जा रहे हों, भक्ति फफक रही थी भगवान के बिना। उस दुःखद क्षण का साक्षी मैं भी था। उस समय मुझे वाल्मीकि ऋषि का स्मरण हो आया। ऐसी विदा तो भूतल पर कभी किसी की भी नहीं हुई होगी। ऐसा त्रास तो कोई जननी-जनक अपनी बेटी को विदा करते समय भी नहीं पाया होगा जो काशी की धर्मप्राण जनता एवं देश-देशान्तर से आए सन्त एवं भक्तों ने पाया था। मेरे मन में आया-कहाँ हो आदिकवि? कहाँ हो महाकवि वाल्मीकि? आज तुम्हारी चरण रज ले लूँ तो धन्य हो जाऊँ। अहो महाकवि वाल्मीकि! दारुण वियोग की पीड़ा की अनुभूति तुम ही समझे।

विरहाकुल क्रौंच पक्षी की कातर पुकार ने तुम्हारे मर्म को विदीर्ण करके रख दिया तो कैसा अमृत निःसृत हो उठा तुम्हारे कोमल अन्तर से। अहो धन्य है तुम्हारी लेखनी, धन्य है तुम्हारी भाव प्रवणता, महामना! कहाँ हो आदि कवि! आज जन समुद्र की पीड़ा का एहसास तुम्हें नहीं हो रहा? तभी मेरे मन में एक भावना जागी, महाराज श्री लीला विग्रह का परित्याग कर साकेतवासी हो गये किन्तु अपना आशीर्वाद, कृपाप्रसाद भक्तों एवं सन्तों के मध्य वितरण कर प्रत्येक के हृदयपटल पर वे विद्यमान हैं। उन्हीं के आशीर्वाद से यह ग्रन्थरूपी उनकी शाश्वत उपस्थिति को जन-जन तक पहुँचाने का मेरा यह लघु प्रयास है।

इस ग्रन्थ के माध्यम से यदि भगवान एवं भक्ति का पुनर्मिलन हो जाए तो मैं अपने प्रयास को सार्थक समझूँगा।

महानन्दशरण

सम्पादक

सम्पादक की कलम से

निमज्योन्मज्जतां घोरे भवाब्धौ परमायनम्।
सन्तो ब्रह्मविदः शान्ता नौर्दृढ़ेवाप्सु मज्जताम्।। श्रीमद्भागवत-11।26।32

यह निर्णीत है कि भगवत्प्राप्ति के अतिरिक्त अविद्या संतरण का दूसरा कोई साधन नहीं है। उस भगवत्प्राप्त्यर्थ शास्त्रों में वर्णित उपायों का अनुष्ठान उतना सरल नहीं है अतः स्वयं श्रीभगवान् जीवों की दयनीय दशा को देखकर अपनी प्राप्ति में सन्तों की अनिवार्य उपादेयता की ओर संकेत करते हुए उन्हें संसार सागर में डूबते हुए जीवों के लिए परमाश्रय बताते हैं। श्रुति ने भी भगवत्प्राप्ति में आचार्य को परमकारण बताते हुए कहा है कि **"आचारवान् पुरुषो वेद"** क्योंकि आचार्य की कृपा से भगवत्स्वरूप का बोध सांसारिक सुखों की अमरता भगवत्प्राप्ति के अमोघ उपाय तथा उनके अनुष्ठान की प्रविधि का परिज्ञान सुलभ होता है। स्वयं भगवान ने भी गुरु को अपने से अभिन्न मानकर उपासना करने का आदेश दिया है।

"आचार्यं मां विजानीयात् नावमन्यते कर्हिचित्" यह सुनिश्चित है कि आचार्यकृपा सभाजित जीव ही भगवत्मुखपंकज को समुल्लासित करने में समर्थ हो पाते हैं। कलिकाल में ऐसे भगवत्प्रेम प्राप्त एवं सन्तलक्षण विभूषित महापुरुष की उपलब्धि निश्चय ही भगवदानुकूल्य का सुफल मानना चाहिए ऐसे ही विशिष्ट आचार्यों की परम्परा में वैदिक मान्य सम्प्रदायों के अन्यतम श्रीरामानन्द सम्प्रदाय के सर्व समादृत तथा अपने विलक्षण साधुभाव के कारण प्रसिद्ध श्री पंजाबी भगवान जी महाराज का नाम वैष्णवों के महान आकाश में जाज्वल्यमान नक्षत्र के समान प्रकाशित है। सन्त अपनी महनीय उपस्थिति से जगत् का कल्याण करते हैं तथा भगवद्धाम गमन के अनन्तर भी उनकी स्मृति समाज को परमश्रेयस् की प्राप्ति में मार्गदर्शन करती है। महाराजश्री के साकेतवास के एक वर्ष के उपरान्त उनके भक्तजनों के स्नेहाग्रह के कारण **"सन्त समाज के कलश-पुरुष-श्री पंजाबी भगवान स्मृति ग्रन्थ"** प्रकाशित किया जा रहा है। यद्यपि समय की स्वल्पता के कारण उनके दिव्य एवं महत्तम अनुकरणीय जीवन

के अशेष भव्यभावों का समाकलन तो इस लघुकाय पुस्तिका में सम्भव नहीं है तथापि कुछ स्मृतियाँ संकलित करने की चेष्टा अवश्य की गयी है।

इस प्रयास को सम्बल दिया है महाराज जी के सद्गृहस्थ शिष्य श्री विजय कुमार गुप्ता ने। इस ग्रन्थ के प्रकाशन का व्यय भार लेकर उन्होंने अपने धन का सदुपयोग मंगलमयी प्रवृत्ति के लिए किया है। इन्होंने अनुपम रीति से समर्पित होकर इसे सम्पन्न किया तथा दिव्यभावों से मण्डित भी हुए जो अन्य के लिए भी प्रेरणादायक होगा।

श्री विजय कुमार गुप्ता जी के मानव जीवन की धन्यता का सम्पादन तो भगवान् श्री राम जी अपने दिव्य स्वभाव के कारण अवश्य हीं करेंगे।

जिन सन्तों, भक्तों एवं विद्वज्जनों ने अपने लेख, सन्देश को यथासमय भेजकर ग्रन्थ के अन्तः एवं बाह्य स्वरूप को समृद्ध बनाया उनका मैं आभारी हूँ, अभिषेक प्रकाशन दिल्ली को हृदय से धन्यवाद देता हूँ, श्री रमण चौधरी, अभिषेक चौधरी का जिन्होंने अत्यल्प समय में इसे भव्यता से प्रकाशित करने का सफल प्रयास किया है। विशेषतः डॉ० जयकान्त शर्मा का मैं आभारी हूँ जिन्होंने मेरा इस कार्य में उत्साह वर्धन किया।

श्री राम जानकी मठ, अस्सी, वाराणसी के हम अत्यन्त आभारी हैं तथा पूज्य महाराज श्री के कृपापात्र यशस्वी युवा सन्त श्री राजकुमारदास जी का, जिन्होंने ग्रन्थ को समग्ररूप में प्रकाशित कराने का दायित्व मुझे सौंपकर मेरे मानव जीवन को सार्थक बनाया तथा मुझे इसके लिए उपयुक्त पात्र समझा। मेरा स्वयं का जीवन भी महाराजश्री के सतत आशीर्वादों से सिक्त रहा है, मेरे जीवन का जो भी उत्कर्ष दृष्टिगोचर हो रहा है वह उसी पवित्र भूमि काशी की उर्वरता का ही प्रभाव है।

और अन्त में—जैसे श्री भगवान् तुलसी पत्रार्पण को ही अपनी सम्पूर्ण सपर्या मानते हैं ठीक वैसे ही भागवत जन भी तद्रूप होने के कारण अपूर्ण एवं त्रुटिपूर्ण कैंकर्य को अपनी सिद्ध करुणामय प्रकृति के कारण उसे सर्वथा साङ्गोपाङ्ग मानकर स्वीकार करते हैं। इस ग्रन्थ का जो भी उत्कर्ष है वह प्रभु और मेरे पूज्य गुरुदेव आचार्य वशिष्ठ त्रिपाठी जी दोनों के समन्वित कृपा के सुपरिणाम का फल है तथा जो त्रुटियाँ हैं वे मेरे प्रमादजन्य हैं उसके लिए मैं स्वयं क्षमाप्रार्थी हूँ।

(डॉ० महानन्द झा)

निवेदन

इस पुस्तक के माध्यम से श्री श्री 1008 श्री पंजाबी भगवान जी महाराज (श्री महाराज जी) के जीवन से जुड़ी जानकारियों का संकलन कर प्रकाशित करवाने का साहस इस उद्देश्य से किया है कि श्री महाराज जी द्वारा किये गये त्याग, तपस्या, सौम्य विचार, भगवत् प्रेम एवं जनहित भावना से अधिक लोग से अधिक लाभान्वित हो सकें तथा उनके द्वारा दिखाये मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल बना सकें।

वैसे तो श्री महाराज जी के बारे में कुछ भी कहना अथवा लिखना सूरज को दीपक दिखाने के समान है, फिर भी श्री महाराज जी के जीवनंकाल से जुड़ी अधिक-से-अधिक जानकारी एवं उनसे जुड़े संत एवं भक्तों के अनुभव श्री महाराज जी की प्रथम पुण्य स्मृति के उपलक्ष्य में भावाञ्जलि स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं।

साथ ही श्री महाराज जी के विभिन्न स्वरूप के चित्रों का भी संकलन इस पुस्तक में माध्यम से प्रस्तुंत कर रहे हैं।

आशा करते हैं लोगों के संस्मरण, उनके प्रेरणादायक जीवन के स्मरण एवं संकलित चित्र हम सभी को श्री महाराज जी के अपने पास होने का एहसास कराते रहेंगे। यही हम सभी की ओर से सच्ची भावाञ्जलि होगी।

निवेदक,

(विजय कुमार गुप्ता)

अनुक्रमणिका

अर्चना खण्ड

ज्योति पुञ्ज

कहाँ सिमट गये वे ज्योतिपुञ्ज,
जिन्हें देख मैं पथ पर बढ़ती थी।
या उनको कहूँ मैं वह मधुबन,
जो हर मौसम में खिलता था।
उन ईश्वर सम को क्या दूँ उपमा,
हर उपमा का श्रोत थे वे।

जब-जब बोले तब फूल झरे,
कुछ ऐसा व्यक्तित्व लिए थे वे।
अब साथ नहीं वह ज्योतिपुञ्ज,
अंधकारमय है हृदय कुञ्ज।
अब स्मृति ही उनकी शेष है बस,
जो कम करती है सूनापन।

पर याद जो उनकी आती है,
न रोक सकें ये नीर नयन।
उनकी मैं उज्ज्वल आत्मा को,
करती हूँ कोटि-कोटि नमन।

—अंकिता गुप्ता
51, नरसिंह अपार्टमेन्ट, महमूरगंज
वाराणसी

हे महापुरुष! शत-शत प्रणाम

तुम देव पुरुष थे इसीलिए
पल भर में सबका मोह तजा
परमेश्वर की बाँहों में जा
अपना तुमने नाता जोड़ा
पर निर्णय इतना त्वरित होगा
हम कैसे विश्वास करें

तुम चन्दन थे, खुद करते थे
औरों को खुशबू देते थे
अपने कर्मों से इसीलिए
प्रभु के मस्तक पर चढ़ते थे
हे महापुरुष! शत-शत प्रणाम
हम सबका तुम स्वीकारो
फिर नया जन्म ले हम सबको
वही राह दिखाने फिर आओ
पर इसी आस में फिर-फिर
हरदम तेरा इन्तजार करें।

धन्य हुई वह माता जिसने—था तुमको जन्म दिया
धन्य हुआ वह पिता जिसने—गोदी था तुम्हें लिया
मैं शब्दों की यह पुष्पाञ्जलि—तुम्हें समर्पित करती हूँ
तुमने इसको है स्वीकारा—मेरे नयनों की अश्रुधारा
अब तुम्हें विदाई देती है—पर नहीं विदाई लेती है।

—आशा गुप्ता
51, नरसिंह अपार्टमेन्ट, महामूरगंज
वाराणसी

आँसू अचानक बह गया

जीवन मरण तो एक शाश्वत सत्य है,
जिसको बदलना है किसी के वश नहीं।
पर वह जिया संसार में कुछ इस तरह,
वाणी के बदले कर्म से कुछ कह गया।
पंच भौतिक देह जल को समर्पित,
दृश्यरूपा आकृति अदृश्य है।
दैव ने छीना उसे संसार से,
पर अजश्र–अमर नाम उनका रह गया।

स्वयं सुखी, सम्पन्न और निश्चिन्त था,
निज व्यथा या गम उसे था ही नहीं।
पर व्यथा से हो प्रभावित वह सदा,
राम लला हनूमान की भक्ति कर गया।

छोटे बड़े के बीच अन्तर छोड़कर वह,
हर स्थिति में मुस्कराता ही रहा।
यों अचानक प्रयाण उनका जब सुना,
दृगकोर से आँसू अचानक बह गया।

–शोभा दूबे
कानपुर

अलविदा हुई खुशियाँ

न जाने क्यों
एक दिन मुझसे
मेरी अपनी खुशियाँ,
सुख सपनों की जिन्दगी
एक भूकम्प सा झटका पा
अनन्त में धूमिल हो गयी
रात और दिन
मन की गहराइयों में
उनकी यादों का सिलसिला
न मरता है न जीता है।

वह समय की अनचाही लहरों के संग
अतल गहराइयों में
अदृश्य हो गये
और मुझे अकेले रहने को
रेत का एक ढ़ेर बना
सदियों की जुदाई ले
अलविदा हो गये
मेरी खुशियों के आगे
एक पूर्णविराम लग गया
और कल्पनाएं सब प्यासी रह गई
एक अतुकान्त कविता सी।

—प्रीतिराजन
मुम्बई

वसुधा भी शीश झुकाती है

वे पावन थे, वे उज्ज्वल थे
वे नीलमणि, वे कंचन थे
वे सागर सम व्यक्तित्व लिए
एक स्नेह-सेतु का सम्बल थे।

था मुखमण्डल पर अतुल तेज,
वाणी में सुधा बरसती थी,
उनके हँसने से कितने ही,
मधुबन-सम हृदय खिलते थे।

वे ज्योति बनकर उदित हुए,
कितने ही राहें दिखा गये,
जो भटके थे जो हारे थे
नव पथ उनको वे बता गये।

नयनों में नीर भरे आता है
जब याद जो उनकी आती है,
ऐसे कंचन सम पावन जन को,
वसुधा भी शीश झुकाती है।

—आरती सिंघल
57, जोरबाग, नई दिल्ली

स्तुति श्री 1008 पंजाबी भगवान् की

"चित्रकूट" में गुरु हमारे, पंजाबी श्री भगवान्
सत् सत् बार नमन् है उनको आये उनकी शरणम्।।

जन्मभूमि पंजाब प्रान्त में
हुए अवतरित "भगवन्"।
बालकपन से ही छोड़ा था,
मोह प्यार का बन्धन।

रामबल्लभाकुंज जानकी घाट में जीता बचपन,
अल्प आयु में पाकर सिद्धी, चमक उठें "श्री भगवन्"।

छोड़ वतन को चले अयोध्या,
भज मन रे रघुनन्दन।
गुरु से मिली अवध में दीक्षा,
किया पठन व पाठन।

गुरु से मिला सुनाम आपको "श्री रामचन्द्र दासन्",
खुला ज्ञान का दिव्य द्वार, तब सन्त हो गये भगवन्।

अगणित शिष्य और शिष्याएँ,
करते चित्रकूट का भरमन।
उन पर कृपा गुरु की रहती,
श्रद्धा पूर्वक करते दर्शन।

दीन-दुखी निर्बलों विकलों के, सबके बने सहारे भगवन्,
खुला हृदय का द्वार, स्वच्छता से, लक्ष्यता है अर्न्तमन।

श्रद्धा व सम्मान सभी का
"भगवन्" आप स्वयं हैं करते
सब की रक्षा हेतु प्राण के
"भगवन्" स्वयं सुसज्जित करते

जिसकी जैसी रहती इच्छा, और हृदय की भरी कल्पना,
उसकी पूर्ती स्वयं है करते "भगवन्" की है यही साधना।
राजा-रंक, फकीर, सभी से,
रोज भरा रहता है आश्रम।
मंत्री संत्री व अधिकारी,
सबका होता यहाँ समागम।
"चित्रकूट" के घाट पे 'भगवन्' देते रहते सबको दर्शन,
अपने निज कर कमलों द्वारा सबका करते हैं अभिनन्दन।
"राम किशन दास महन्त" को सौपा,
"चित्रकूट" "नांदी" का आश्रम,
"राम-जानकी" मठ को सौंपा,
महन्त "राजकुमार" को,
अन्तिम यात्रा हो "काशी" में यह थी उनकी भावना,
"विश्वनाथ" के द्वार पधारे पूरी करने कामना।
सम्वत् 2०63 की फाल्गुन शुक्ला सप्तमी,
केदार खण्ड के अस्सी घाट से साकेत धाम-पधारें
धन्य गुरु दरबार आपका,
धन्य "जानकी कुण्ड" ये आश्रम,
धन्य "गुरु" की महिमा प्यारी,
मिलता सबको मोछ का द्वारम्,
जनमन का कल्याण करो 'गुरु' यही 'सुनयना' करे कामना,
सारा हो संसार "राम मय"! सबको देखे राम "सुनयना"।

—सुनयना
वैशाली, गाजियाबाद

प्रणामाञ्जलि

सन्त के सरताज वो साधु अजब महान थे,
दिल से भगवद्भक्त वाराणसी के शान थे।
दिन था वो ठंढ़ का अस्सी किनारे मैं खड़ा,
सोच में डुबा पड़ा था कैसे बनी थी ये धरा।
धरा के इस धार में धड़धड़ाता ज्ञान है,
मूल में बैठा कोई सन्त ही महान है।
वो सन्त कोई और नहीं पंजाबी भगवान है
प्रकाशपुञ्जतरणि सा जिन्हें 'संजीत' का प्रणाम है।

—संजीत कुमार झा 'प्रदीप'
लालबहादुरशास्त्रीसंस्कृत विद्यापीठ, नयी दिल्ली

संस्मरण खण्ड

इस अकिञ्चन के परमाश्रय-श्री महाराज जी

-राजकुमार दास, श्रीरामजानकी मठ; वाराणसी

सजातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।

इस परिवर्तनशील संसार में उसी मानव का जन्म सार्थक है, जिसके जन्म लेने से देश, जाति और समाज का अभ्युदय होता है, कुल पवित्र होता है, जननी कृतार्थ होती है, वसुन्धरा पुण्यवती कहलाती है। धन्य हैं वे महापुरुष जो अपने समुज्ज्वल व्यक्तित्व एवं अलौकिक कृतित्त्व के दिव्यालोक से दिग्भ्रान्त संसार को आलोकित करते हैं।

संसार में धर्म और मर्यादा की रक्षा व दीक्षा के लिए सन्त-महात्मा आविर्भूत हुआ करते हैं और अपने तप-ज्ञान-शक्ति के प्रभाव से जगत् का लौकिक एवं पारलौकिक हित साधन किया करते हैं। ऐसे ही एक सन्त भारतीय अस्मिता का मानसरोवर, वीर प्रसूताभूमि पंजाब प्रान्त के करनाल जनपद में सिरसा नामक गाँव में आशाओं एवम् अभिलाषाओं के मृदुल जल से सिंचित कुटिया की लतिका, गृहमेध में सांस-सांस की आहुति देने वाली माँ श्रीमती सुमित्रा देवी के यहाँ सन 1906 ई० श्रावण शुक्ल तृतीया (हरियाली तीज) को शरीरधारी बनकर आया। पिता जी का नाम नन्दलाल जी था। उस दिन दम्पती श्री नन्दलाल जी एवं सुमित्रा देवी के आंगन में नया संगीत झंकृत हुआ, दैवी सम्पदा की उपलब्धि हुई। माता-पिता अत्यन्त धर्मभीरु थे। शिशु का नाम रखा-श्री हरि। श्रीहरि करुणा के क्रोड में, ममता की मंजूषा में, वात्सल्य की वाटिका में बड़ा होने लगा।

अवतारी महापुरुषों के जन्म और लालन-पालन की घटनाएँ भी कौतूहलपूर्ण होती है। भगवान् श्री कृष्ण वसुदेव-देवकी के घर पैदा हुए किन्तु उनकी मनमोहक किलकारियाँ और बाल-लीलाओं का आनन्द गोकुल के गोप नन्द

बाबा और यशोदा ने लिया। ऐसे ही शिशु श्री हरि मात्र एक माह का था तभी माता-पिता भगवान् को प्यारे हो गये। परिवार वालों ने इनका समुचित लालन-पालन किया।

सन् 1913 ई० में 7 वर्ष की छोटी उम्र में आप भगवान् श्रीराम की जन्म स्थली, भारतीय आध्यात्मिकता के केन्द्र श्री धाम अयोध्या पधारे। किन्तु वहाँ अधिक दिनों तक नहीं रुके। निरन्तर केदारनाथ, बद्रीनाथ, वृन्दावन जनकपुर आदि धार्मिक नगरों का परिभ्रमण करते रहे।

इसी क्रम में वृन्दावन में कुछ दिन निवास करके अध्ययन किया और मध्यमा परीक्षा उत्तीर्ण किया। भगवत्प्रेम और उनके प्रति अनन्यनिष्ठा आपको अध्ययन से विमुख करने में सफल हो गयी, आप काशी पधारे। यहाँ श्री राम लीला में रुचि हो गयी। लीला के आचार्य ने आपके भीतर बैठे श्रीराम को शायद परखा और आपसे श्रीराम का अभिनय कराया जाने लगा।

वैराग्य का प्रथम किन्तु सुदृढ़ भाव शायद वहीं अंकुरित हुआ। शारीरिक सौन्दर्य, भगवन्निष्ठ अभिनय को देखकर दर्शकों ने आपके भीतर श्रीराम की झलक पायी। जन समूह ने आकुल कण्ठ से आपको भगवान की संज्ञा से मण्डित किया। पंजाब में जन्म होने के कारण "पंजाबी भगवान" नाम प्रसिद्धि को प्राप्त किया। यहाँ महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि लीला काल में राज्याभिषेक के समय जब शीश पर मुकुट रखा जाता था उस समय जिसको जो भी आशीर्वाद के रूप में आपने कहा उसे वह प्राप्त हो जाता था। अतः आपको भगवान का रूप माना जाने लगा।

13 वर्ष की किशोरावस्था में अयोध्या के यशस्वी सन्त श्री राम बल्लभाशरण वेदान्ती ने आपको मन्त्रदीक्षा प्रदान किया। 18 वर्ष की अवस्था में उसी वैष्णव परम्परा के विद्वान् सन्त श्री राम पदारथ दास वेदान्ती जी ने विरक्ति दीक्षा देकर भजन करने की आज्ञा दी। गुरुदेव का दिया हुआ नाम था—श्री राम चन्द्र दास। सन् 1936 ई० से आपका स्थायी रूप से निवास श्री चित्रकूटधाम हो गया।

प्राकृतिक सौन्दर्य एवं उपासना के उपयुक्त चित्रकूट के परम पवित्र एकान्त वातावरण हनुमान धारा में कठोर पयोव्रत लेकर विशिष्ट साधना में तल्लीन हो गये। इक्कीस वर्षाधिक समय तक आपका यह अनुष्ठान चलता रहा। लोगों को ऐसा विश्वास है कि इसी अवधि में श्री हनुमान जी की विशेष कृपा आपके

ऊपर हो गयी जो जो अपनी पूर्ण गरिमा के साथ आपके साथ सन्नद्ध थी। इसके पीछे आपकी भगवान् के प्रति अनन्यनिष्ठा ही थी।

स्वभाव से चन्दन, वाणी से शालीन, व्यवहार से मर्यादित, आचार से संयमी, विचारों से आस्तिक, संकल्प से दृढ़निश्चयी, हृदय से संवेदनशील, राजनीति से निष्कलुष, जीवनानुभव से समृद्ध और भारतीय आध्यात्मिक मूल्यों की सामुद्रिक क्षमता से पुलकित श्री महाराज जी आज के आणविक परिवेश को देखकर चिन्तित स्वर में बहुधा कहते थे कि इस क्षणभंगुर जीवन को लेकर भी आदमी कितना वैमनस्य पालता है, यह उचित नहीं। उनका मानना था कि व्यक्ति ईश्वर के प्रति निष्ठा रखता हुआ अतीत से प्रेरणा प्राप्त करें पछतावा नहीं, वर्तमान चुनौती हो चिन्ता नहीं एवं भविष्य आशाओं एवं अभिलाषाओं से भरा हो आशंकाओं से नहीं।

नारी उत्थान के प्रति अपनी भावना व्यक्त करते हुए आप कहते थे कि नारी शक्ति की प्रतीक है, उसे अपनी शक्ति का आभास करा दिया जाय, उसे सही दिशा-निर्देश दिया जाय तो वह गार्गी-लीलावती जैसी विदुषी, मीराबाई जैसी सन्त तथा कवयित्री जोधपुरी बेगम और लक्ष्मीबाई जैसी वीरांगना तथा सती-सावित्री जैसी धर्मपरायण पतिव्रता बन सकती है। अतः नारी को उसके प्रतिभा के अनुरूप चेता कर उसे उचित स्थान तक पहुँचा देने की चेष्टा की जानी चाहिए।

देश भक्ति की भावना से ओत-प्रोत श्री महाराज जी इस देश के अनेकों आन्दोलनों को देख चुके थे। समय-समय पर देश की प्रतिष्ठा हेतु अपनी भावनात्मक छाप छोड़कर धर्मध्वजियों को इस बात का एहसास कराया कि भारतमाता वीरप्रसूता है बन्ध्या नहीं। पूज्य महाराज जी 65 वर्षों से चित्रकूट धाम में भजन करते आ रहे थे। सतत भजन का ही सुपरिणाम है कि इस देश के ख्यातिलब्ध हस्तियाँ आपसे आशीर्वाद प्राप्त करके प्रधान मंत्री पद तक की यात्रा पूर्ण कर चुकी हैं। देश-विदेश में लम्बी शिष्य मण्डली व्याप्त है। भारत के पूर्व प्रधानमन्त्रियों प्रियदर्शिनी श्रीमती इन्दिरा गाँधी एवं भारतरत्न स्व० राजीव गान्धी बहुधा आपके आशीर्वाद से लाभान्वित हुए हैं। अभिनय क्षेत्र में परमवर्चस्वी श्री अमिताभ बच्चन सपरिवार आपके शिष्य व भक्त हैं। महामहिम राज्यपाल स्व० श्री विष्णुकान्त शास्त्री आपके कुशल निर्देशन में चित्रकूट आश्रम में लगातार 5 वर्षों तक साधना करते रहे। भजन का ही यह प्रभाव था कि पूज्य महाराज जी ने इस देश को विविध क्षेत्र में सकारात्मक सहयोग किया था।

चित्रकूट धाम में श्री हनुमान् जी की स्थापना, अखण्ड रामनाम संकीर्तन, मानसपाठ, वाल्मीकि रामायण एवं महामृत्युंजय मन्त्र का जप, श्री राम कथा की धारा बहायी जा रही थी। श्री महाराज जी सामाजिक क्षेत्र में भी असंख्य स्तुत्य कार्य किये हैं।

चित्रकूट धाम को वन से भुवन बनाने का श्रेय श्री महाराज जी को जाता है। वहाँ आधुनिक सुविधा से युक्त शताधिक कमरों का निर्माण, अत्यन्त व्ययसाध्य मन्दाकिनी तट पर सीढ़ियों एवं भव्य घाट का निर्माण, दैनिक शताधिक सन्त सेवा, छात्रों के अध्ययन-आवास-भोजनादि की समुचित व्यवस्था, देश-विदेश से पधारे अतिथियों की समुचित सेवा के साथ ही अनुष्ठान-व्रत करने वालों को अभिलषित वस्तुओं की उपलब्धि भी आपके द्वारा सहज ही हो जाती थी।

सन् 1997 से आप बाबा विश्वनाथ के त्रिशूल पर बसी काशी में ही भजन कर रहे थे। यहाँ अस्सीघाट स्थित श्री राम जानकी मठ का निर्माण एक करोड़ रूपये से भी अधिक लगाकर भव्य मन्दिर, अतिथिशाला, सन्त निवास एवं छात्रों का निवास बनवाया। मन्दिर में गुरुदेव की भव्यमूर्ति स्थापित कर अपनी गुरुभक्ति को संवलित किया। चित्रकूट की तरह ही काशी में भी अखण्ड श्री राम नाम संकीर्तन लगभग 10 वर्ष पूर्व से प्रारम्भ करवाया गया है।

99 वर्षीय सन्तशिरोमणि श्री गुरुदेव जी की दैनिकचर्या पूर्व की ही भाँति भजन एवं लोकमंगल की भावना से ओत-प्रोत थी।

पूज्य श्री महाराज जी के कुछ अमृत वचन ऐसे हैं जो जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। यथा– 1. यदि तू उसका है तो तुम्हें डर किसका है, अगर तू उसका नहीं तो तुझे आस किसकी है? 2. बेटा! इन्सान का दिया हुआ धन कभी किसी के पास नहीं रहता, वह रहता है जो भगवान् स्वयं किसी को देते हैं। 3. नेक कमाई करके खाओगे वही आत्म आनन्द देने वाला होगा। 4. संसार का प्रेम और प्रभु का प्रेम साथ-साथ नहीं चल सकता जैसे एक म्यान में दो तलवार नहीं समा सकती। 5. उस सच्चे आनन्द की प्राप्ति के लिए आत्ममंथन करो। सभी रत्न इसी में है, बाहर भटकने से कुछ भी हाथ नहीं लगेगा।

एक बात और– स्वयं ऋग्वेद प्राचीन एवं नवीन दोनों प्रकार के सन्तों ऋषियों को सादर स्मरण करता है–

"अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरिड्यो नूतनैहत"। पूज्य श्री महाराज जी जैसे ततःपूत व कर्मयोगी सन्त की अर्चना वस्तुतः भारतीय ऋषिपरम्परा की अर्चना है। इस तुच्छ शब्दों के माध्यम से हम उसी दिव्य ऋषि परम्परा की वन्दना करते हैं जिसके प्रताप से हम आज भी "उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत" की अमर प्रेरणा से समग्र विश्व में नई आध्यात्मिक स्फूर्ति का सन्देश प्रसारित करने का साहस कर रहे हैं।

संक्षेपतः पूज्य गुरुदेव महाराज श्री सच्चे धर्म प्रचारक थे, समाज सुधारक थे, और सर्वांगीण व्यक्तित्वधारक थे। ऐसे उच्चकोटि सन्त के चरणों में नतमस्तक होने में किसको गर्व नहीं होगा?

सद्गुरुचरण सेवक,
राजकुमार दास
श्री रामजानकी मठ, अस्सी
वाराणसी

श्री महाराज जी-आध्यात्मिक झलकियाँ

-मीरा/हरनाथ अग्रवाल U.S.A.

पूरे उत्तर भारत में पंजाबी भगवान को भला कौन नहीं जानता है? उनका जन्म पंजाब प्रान्त के भटिंडा नामक शहर में हुआ था। बचपन से ही उनकी रुचि पढ़ाई की अपेक्षा आध्यात्म की ओर अधिक थी। जब वह चौथी कक्षा में थे तो उनकी दादी ने उनसे कहा कि तुम राज्य सरकार द्वारा छात्रवृति परीक्षा में बैठो। बालक का मन पढ़ाई में नहीं लगता था अतः उसने परीक्षा में बैठने से मना कर दिया। उनकी दादी ने उनसे कहा राम राम कहते हुए परीक्षा भवन में चले जाओं। पंजाबी बाबा ने वैसा ही किया और पूर्ण विश्वास से राम राम कहते हुये परीक्षा भवन की ओर चल पड़े। परीक्षा पत्र देखने के बाद उन्हें ऐसा लगा कि उन्हें कुछ भी नहीं आता है। पर जब उन्होंने लिखने के लिए कलम हाथ में उठाया तो उन्हें कुछ वैसा ही अनुभव हुआ जैसे कि महान सन्त स्वामी योगानन्द जी को कुछ ऐसी स्थिति में हुआ था या स्वामी विवेकानन्द जी को हुआ था जब वह बोस्टन (यू. एस. ए.) में भाषण देने के लिए मंच पर खड़े हुए थे। बालक के मस्तिक में सारे प्रश्नों के सही उत्तर अपने आप आते चले गये और उन्होंने पूर्ण परीक्षा पत्र लिखा और उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब वो परीक्षा में प्रथम घोषित हुए और उन्हें मात्र चार रूपये प्रति माह की छात्रवृत्ति भी मिली।

आध्यात्मिक जीवन

बालक के आश्चर्य की सीमा नहीं थी जब उनहोंने देखा कुछ क्षण भगवान का नाम लेने से इतना सुन्दर परिणाम मिलता है। उनके अन्दर से तीव्र इच्छा हुई और उन्होंने अपना समस्त जीवन भगवान को पाने के लिए समर्पित करने का निश्चय किया। वह घर से किसी प्रकार की सहायता लिए बिना अपनी इच्छा के सहारे भगवान राम की जन्म भूमि अयोध्या (उत्तर प्रदेश) की ओर चल दिये। वहाँ पहुँच कर उनकी मुलाकात अपने गुरु परम पूजनीय श्री राम पदारथ दास जी महाराज से हुई जिन्होंने उन्हें योग का उपदेश दिया।

बालक ने गुरु से जो ज्ञान लिया उसके अनुसार भगवान के ध्यान में लीन हो गये। ध्यानावस्था में ही उन्होंने भगवान राम के प्रत्यक्ष दर्शन किये और साक्षात्कार कर के वे खुशी से अभिभूत हो उठे।

चित्रकूट गमन

उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय चित्रकूट में बिताने का निश्चय किया जहाँ राम ने चौदह में से ग्यारह वर्ष अपने वनवास के बिताए थे। चित्रकूट भारत वर्ष के मध्य प्रदेश प्रांत में स्थित एक छोटा सा कस्बा है। चित्रकूट में कामदगिरि नाम का एक पर्वत है। उसके एक शिखर पर कुटिया बना कर भगवान राम जानकी सहित रहते थे। दूसरे शिखर पर लक्ष्मण कुटिया बनाकर रहते थे। वहां आप नंगे पाँव उस कामदगिरि पर्वत की परिक्रमा किया करते थे। पंजाबी भगवान सारा समय भगवान राम तथा हनूमान जी की भक्ति में व्यतीत करते रहते थे। धीरे-धीरे उनकी आध्यात्मिक शक्ति बहुत बढ़ गयी। उनको आध्यात्मिक तत्त्व का ज्ञान हो गया। स्थानीय लोग उन्हें भगवान कहने लगे क्योंकि वो पंजाब प्रांत के रहने वाले थे अत: लोग उनको पंजाबी भगवान कहने लगे। पंजाबी भगवान जी को चित्रकूट में रहते हुए कोई 75 वर्ष हो चुके थे। उन्होंने एक वार्तालाप के दौरान मुझे बताया कि भगवान हनुमान जी की कृपा से उनकी सारी कठिनाईयाँ धीरे-धीरे सुलझ जाती हैं।

भगवान जी निर्धनों की सहायता में तत्पर

भगवान जी अपना अधिकांश समय या तो चित्रकूट में या वाराणसी में व्यतीत करते थे। वे एक निःशुल्क डिस्पेंसरी भी चलाते थे जहाँ मुफ्त दवाइयाँ बटती हैं। उनके आश्रम पर प्रति दिन 150 साधुओं को सुबह के जलपान से लेकर रात के भोजन तक की निःशुल्क व्यवस्था है। (भंडारा) भोजन सादा स्वास्थ्य वर्धक और स्वादिष्ट होता है। मुझे भी प्रसाद पाने का सौभाग्य कई बार मिला है। भगवान जी ने ऐसी व्यवस्था भी कर रखी थी कि युवकों को भारतीय आध्यात्मिक दर्शन का ज्ञान दिया जा सके वहां आश्रम में।

जानकीकुण्ड पर बना आश्रम और मंदिर

पंजाबी भगवान को ऐसा प्रतीत हुआ कि चित्रकूट तीर्थ यात्रा के लिए आने वाले यात्रियों की संख्या बढ़ती जा रही है। अब उन्होंने जानकी कुंड पर एक आश्रम बनाने की सोची जहाँ पर यात्रीगण बिना खर्च के ठहर सकें।

पंजाबी भगवान प्रभु श्री राम के तथा उनके महान भक्त हनुमान के अनन्य

उपासक थे। अतः उनहोंने मंदाकिनी (गंगा) के किनारे हनुमान जी का एक मंदिर स्थापित किया जिसमें श्री हनुमान जी की परम पवित्र मूर्ति की स्थापना की। यात्रीगण जानकी कुंड पर मंदाकिनी यानी गंगा में स्नान कर के हनुमान जी के दर्शन और पूजन करते हैं। यहां एक घटना का उल्लेख है जो पंजाबी भगवान ने स्वयं बताई कि जब मंदिर का निर्माण कार्य चल रहा था तो ठेकेदार ने कहा २०, ००० रू. की तुरंत आवश्यकता है। पंजाबी भगवान ने उनसे कहां कि बाजार जाकर तुरंत सामान लाओ उन्हें पता नहीं था कि पैसे नहीं थे। ठेकेदार खाली हाथ वापस लौट आया क्योंकि उसे उधार पर कोई सामान नहीं मिला। मंदिर निर्माण कार्य बन्द होने का डर हो गया। भगवान कहते हैं कि जब भी उन्हें कोई समस्या आती थी तो वह हनुमान जी से सहायता के लिए बात करते थे। जैसे कि स्वामी राम कृष्ण, दुर्गा माँ से बातचीत या वार्तालाप करते थे। उस समय भी पंजाबी भगवान ने सहायता के लिए हनुमान जी का स्मरण किया। जल्दी ही एक यात्री उनके पास आया और उन्हें २०,००० रू. देकर कहा कि आप इसे रख लीजिए मैं अभी गंगा में स्नान कर के लौट कर फिर ले लूँगा। भगवान ने उनसे कहा कि वह उनको नहीं जानते हैं और रूपयों की जिम्मेदारी नहीं लेना चाहते थे फिर भी वह यात्री नहीं माना और पैसे उनके पास रखकर गंगा स्नान को चल गया। फिर वह कभी नहीं लौटा और भगवान जी को यह आभास हुआ कि वह यात्री और कोई नहीं बल्कि स्वयं पवन पुत्र हनुमान जी थे।

भक्तों के सहायक

भगवान जी अक्सर कहा करते थे। मैं एक साधु हूँ मैं लोगों की समस्याओं का समाधान नहीं करता क्योंकि उस अवस्था मे लोग ईश्वरीय सहायता के लिए उन्हें घेरे रहेंगे। कभी-कभी भगवान जी दया से प्रेरित हो कर कहते थे। "मैं हनुमान जी से तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगा" स्थानीय लोग कहते हैं इसका अर्थ हैं कि वे महावीर जी से उनके दिव्य आशीर्वाद को इस्तेमाल करने के लिए कहेगें। भगवान जी प्रचार से घबराते थे और वे नही चाहते कि लोग उनकी दिव्य शक्तियों के बारे में जाने।

अन्त में मैं अपने ऊपर हुई घटना का उल्लेख करती हूँ। हम लोग अमेरिका में रहते हैं। एक साल पहले मुझे सिर दर्द आरंम्भ हुआ। कई डाक्टरों को दिखाया। किसी दवाई का कोई असर नहीं हुआ और सिर दर्द ठीक नहीं हुआ। मैंनें भगवान जी से विनती की। उन्होंने मेरे सिर पर हाथ रखा और कहा कि मैं प्रार्थना अब करूँगा मेरे सिर में दर्द बिलकुल नहीं होता है।

सेवा के कीर्तिस्तम्भ–पूज्य महाराज जी

–रामकिशनदास, चित्रकूट

जब मैं ये पंक्तियाँ लिखने बैठता हूँ तो एक चेहरा, एक व्यक्तित्व बार-बार आँखों के सामने चमक उठता है। एक चेहरा–गौर वर्ण, गम्भीर, पर अधरों पर भुवन मोहन मुस्कान, ईश्वरीय आभा से पूर्णतः मण्डित जो 99 वर्ष की पूर्णायू में भी युवा सा आकर्षण लिए हुए था। जो बाहर-भीतर एक सा है नितान्त निश्छल, निष्कपट, निर्वैर, परसेवा के लिए सदैव उद्यत। सबके लिए पारदर्शी स्नेह लिए हुए तत्पर।

आखिर क्या था उन महापुरुष में जो इतने लोगों के हृदय को एक ही बन्धन में माला की तरह पिरो गये। अवश्य ही कुछ असामान्य था जो दिखने में अतिसामान्य से थे पर अपने गुणों के कारण असामान्य–असाधारण हो गये।

हाँ, उन्हें कई पुराने सन्तों ने साधारण से असाधारण बनते देखा। एक 7–8 वर्ष की आयू वाले बालक को भक्ति की पराकाष्ठा पर पहुँचते देखा। उनकी विशिष्टता तो थी उनके वैयक्तिक गुणों में, सेवा की बहुमुखी गतिविधियों में। व्यक्तिगत साधना के अतिरिक्त उनकी विशिष्टता थी सामाजिक धर्म के बीच संतुलन सामञ्जस्य बनाए रखने में क्योंकि सब सदैव ऐसा नहीं कर पाते। जिस किसी संस्था या आश्रम को एक बार अंगीकृत कर लेते थे उसके लिए वे पूर्णतः समर्पित हो जाते थे। वे श्रीराम एवं हनूमान जी के अनन्य भक्त थे और भक्ति समर्पण माँगती है, शायद यही कारण है कि उनका भक्तिगत समर्पण भाव समाज सेवा के क्षेत्र में भी बना रहा व भक्ति मनुष्य को विनम्र भी बनाती है। श्री महाराज जी अपने आराध्य के लिए ही नहीं मानव मात्र के लिए विनम्र थे। ऐसा लगता है समर्पण, सेवा और विनम्रता की दृष्टि से भगवद् मन्दिर और सामाजिक मन्दिर उनके लिए पर्य्याय हो गये थे। मानव मात्र जैसे उनके लिए उपनाम ही था। सच्चे भक्त, सन्त और साधु भगवान् के सबसे अधिक निकट होते हैं, सम्भवतः यही कारण है कि महाराज जी भक्तों, सन्तों के भी अनन्य भक्त और

सेवक थे। वे उनके मुख से कथा या प्रवचन हीं नहीं सनुते थे, वरन् उन्हें अपना महिमामय अतिथ्य भी प्रदान करते थे।

श्रद्धावान् होने के साथ ही उनमें उदारता, सहनशीलता और क्षमाशीलता थी जो उनके वैयक्तिक जीवन के साथ सामाजिक जीवन में भी विद्यमान थी। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष से वे मुक्त थे, इसी कारण वे अजात शत्रु थे। वे विष पीकर भी अमृत लुटाने वाले थे।

वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्

-महन्त सुतीक्ष्णदास, सुदामा कुटी, वृन्दावन

भारतवर्ष अनादि काल से ऋषि-मुनियों की तपःस्थली रही है। वीतराग तपोनिष्ठ एवं भगवद्भक्तिपरायण सन्तों ने अपने चरणों की रज से इस धराधाम को पावन किया। इस भारतवर्ष की महिमा को देखकर बड़े-बड़े इन्द्रादिक देवता भी इस धराधाम पर जन्म लेने को लालायित रहते हैं। जब जीवन जन्म लेकर मन-कर्म-वचन से अपने प्यारे प्रभु की आराधना एवं भगवद् भक्तों की निश्छल प्रेम से सेवा करके अपने जन्म को सफल करते हुए आजीवन अपने दृढ़ व्रत का निर्वाह करते हुए नश्वर शरीर का परित्याग करके भगवत् धाम को पधारता है, उस समय सभी लोकों के देवता अपने-अपने सिंहासन से उठकर नगर-द्वार पर जाकर उसकी पूजा एवं अभिनन्दन करते हैं। सृष्टि-रचयिता ब्रह्मा भी आह्लादित होकर उस जीव की पूजा करते हैं और अपने भाग्य की बड़ाई करते हैं। अहा! आज मेरे द्वारा रची हुई सृष्टि का जीव भगवान् के धाम को जा रहा है। मेरी सेवा सफल हुई।

भारतीय संस्कृति का रक्षक परम तपस्वी प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखने वाले, परमार्थ पथ प्रदर्शक युग पुरुष परम आदरणीय श्री स्वामी रामचन्द्र दास जी महाराज (पंजाबी भगवान) भगवद् विभूति थे। आपने असंख्य जीवों को भगवान के सम्मुख करके भगवत् धर्म पर चलना सिखाया। जब अपने राम चित्रकूट दर्शन करने गये तब आपके सान्निध्य में निवास किये। आपके मुख कमल से चित्रकूट की महिमा सुनकर अपने को धन्य माना। आपकी सन्तसेवा की अमिट छाप आज तक मेरे हृदय में विद्यमान है। जो कोई भी आपके दर्शन कर लेता आपकी दिव्य छवि उसके हृदय में अंकित हो जाती। अनन्त श्री विभूषित वैष्णव कुलभूषण हमारे पूज्य श्री दादागुरु श्री सुदामादास जी महाराज आपके विषय में बहुत ही मधुर प्रसंग सुनाया करते थे। जब आप श्री अयोध्या धाम में रहते थे, उस समय आप श्रीराम जी के स्वरूप धारण करते थे और अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन देकर भक्तों को कृतार्थ करते।

श्री महाराज जी का स्वाभाविक आप में बड़ा प्रेम था। राम रूप में आपके दर्शन करके वे अपने को धन्य मानते। एक बार वृन्दावन की रासलीला के स्वरूपों का अयोध्या में आगमन हुआ। रासलीला देखकर आपके मन में वृन्दावन के प्रति स्वाभाविक प्रेम उमड़ा और रात्रि में चुपचाप वृन्दावन चले आये। जब श्री पंजाबी भगवान जी को पता चला कि महाराज जी वृन्दावन चले गये तो वे भी किसी को बिना कुछ बताये वृन्दावन चले आये। इधर श्री महाराज जी और पंजाबी भगवान का ज्ञान गुदड़ी में मिलन हुआ। महाराज जी बोले प्रभु आप वृन्दावन कैसे आ गये आपको यहाँ पर कष्ट होगा। हम तो सन्त हैं, जैसा रूखा-सूखा हमको मिलेगा उसी में सन्तुष्ट निर्वाह करेंगे पर आप कैसे रहिएगा। श्री पंजाबी भगवान बोले कि महाराज जबसे आप वृन्दावन चले आये तब से हमारा मन नहीं लगता। उधर अवध में श्री पंजाबी भगवान के बिना सब भक्त दु:खी थे। सभी चिन्तित थे कि भगवान कहाँ चले गये, तभी किसी ने कहा कि सुदामा दास जी से बहुत प्रेम था, हो सकता है वह वृन्दावन चले गये हों। अत: उनके परिजन खोजते हुये वृन्दावन आये और श्री महाराज जी एवं श्री पंजाबी भगवान जी के दर्शन कर बहुत ही प्रसन्न हुए। तत्पश्चात् बहुत अनुनय विनय करके महाराज जी ने अवध भेज दिया।

"सबहि मानप्रद आपु अमानी"

सन् 1993 में आप वृन्दावन सुदामा कुटी में एक बार पधारे। उस समय रासबिहारी भगवान की रासलीला जगमोहन में हो रही थी। हम सभी सन्तों ने स्वागत सत्कार कर पूज्य बड़े महाराज जी के आसन पर बैठाना चाहा पर आप उस आसन को प्रणाम कर बगल में बैठ गये और बोले पूज्य महाराज जी हमारे हृदय में विराजमान हैं। हम उनके आसन पर कैसे बैठ सकते हैं? आपका महाराज जी के प्रति अन्त समय तक हार्दिक प्रेम था। सन्तों का जैसा गुण शास्त्रों में बताये गये हैं वह सब गुण आपमें विद्यमान थे। आप चित्रकूट एवं काशी में वास कर अपने आराध्य श्री सीताराम जी की आराधना एवं सन्त सेवा करते हुए शतायु पूर्ण कर भागीरथी गंगा के तट पर इस नश्वर शरीर का परित्याग कर श्री ठाकुर जी की नित्य लीला में सम्मिलित हो गये।

वैष्णवो मम देहस्तु, तस्मात् पूज्यो महामुने।
अन्ययत्नं परित्यज्य, वैष्णवान् भज सुव्रत॥

हे महामुनि! वैष्णव मेरी देह होता है, इसलिए पूजनीय होता है।

हे सुव्रत धारण करने वाले तुम दूसरे यत्न को छोड़कर केवल वैष्णवों की सेवा करो।

परम रसिक सन्त महन्त श्री राजकुमार दास जी महाराज बड़े ही उदार एवं अपने गुरुदेव भगवान के पदचिह्नों पर चलने वाले बड़भागी महापुरुष है। इस दास पर विशेष स्नेह रखते हैं। स्मारिका में दो शब्द लिखने के लिए प्रेरित कर इस दास पर विशेष कृपा की है। आपके हम आभारी हैं।

इन्हीं शब्दों के साथ श्री महाराज जी के चरण कमलों में वन्दन करता हूँ।

अपराध अगाध भएँ जनते, अपने उर आनत नाहिंन जू।
गनिका गज गीध अजामिल के गनि पातक पुंज सिराहिन जू॥
लिये वारक नाम सुधामु दियो जोहि धाम महामुनी जाहिन जू।
तुलसी! भजु दीन दयालहि रे रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू॥

श्री रामचन्द्र के दास–श्री पंजाबी भगवान

–श्रीनारायण दास भक्तमाली, बक्सर, बिहार

बचपन में धारण किये, राम-रूप सुखखान।
जन्मभूमि पंजाब की, (याते) पंजाबी-भगवान।।

पंजाबी-भगवान, शिष्य जानकी-घाट के।
बसे जानकी कुण्ड, विलक्षण भव्य ठाट के।।

गुरुवर (श्री) राम पदारथ दास जी श्री वेदान्ती।
(श्री) राम वल्लभा कुञ्ज अवध, अद्भुत मुखकान्ती।।

चित्रकूट-काशी बसे, सेवा धर्म सुजान।
जन्मभूमि पंजाब की (या ते)पंजाबी भगवान।।

परमार्थ-व्यवहार में अतिशय-निपुण, महान।
(श्री) राम चन्द्र के दास, श्री पंजाबी-भगवान।।

पंजाबी भगवान, साधु-सेवा कृत संतत।
नाम-रूप-लीला-चरित्र, प्रभु-गुण-कीर्तन-रत।।

कथा माँहि अति प्रीति, व्यथा हरते तन-मन की।
कमठ-अण्ड जिमि राखत, सुधि, जन नारायन की।।

सन्त-धेनु-विद्यार्थी, सेव्य राम-हनुमान।
(श्री) रामचन्द्र के दास श्री पंजाबी-भगवान।।

गुरु की महिमा

-हरिशंकर गौतम "गीतेय"

गुरु गोविन्द दोनों खड़े काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरु आपने जिन गोविन्द दियो बताय।।

मेरे गुरुदेव प्रातः स्मरणीय ब्रह्मलीन स्वामी रामचन्द्र दास जी महाराज (वेदान्ती आश्रम जानकी कुण्ड चित्रकूट व राम जानकी मठ अस्सी घाट, वाराणसी के संस्थापक एवं व्यवस्थापक) एक उच्च कोटि के संत थे। वे सरल व शांत स्वभाव, उदार हृदय, मृदु एवं मितभाषी थे। सब के कल्याण की कामना किया करते थे। साधु संतों, ब्राह्मणों व असहायों की हर तरह से सहायता करते थे। आपके दर्शनमात्र से भक्तजनों के मन को बड़ी शांति मिलती थी। वे अपने अनुयायियों को यही उपदेश देते थे कि खूब भजन करो। कलियुग में रामनाम जप ही सबसे सरल उपाय है और मनोवांछित फल देने वाला भी। रामायण में भी तुलसीदास जी ने रामनाम की बड़ी महिमा गाई है।

'रामनाम कलि अभिमत दाता।
हित परलोक लोक पितु माता।''
कलियुग केवल नाम अधारा।
सुमिर सुमिर नर उतरहिं पारा।।

इस संबंध में एक बड़ा प्रसिद्ध श्लोक भी है। हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलं। कलौनास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।'' उपरोक्त उद्धरणों से यही सिद्ध होता है कि कलियुग में भक्तों का केवल रामनाम जप से ही भव-संतरण हो सकता है। आगे यह भी कहा है कि

'रामनाम जपते रहो जब लगि घट में प्राण।
अन्तकाल पछिताओगे जब छूट जायेंगे प्राण।''

अस्तु अहर्निश राम नाम ही जपते रहना चाहिए।

परम श्रद्धेय गुरुवर जैसी दिव्य विभूतियाँ भक्तों के कल्याणार्थ इस धरा धाम पर बार-बार अवतरित होती रहती हैं। इस बार आपका प्राकट्य कैथल, जिला हिसार (जो पहले पंजाब प्रांत के अंतर्गत था और अब हरियाणा राज्य में) के एक श्रेष्ठ ब्राह्मण परिवार में हुआ। बचपन से ही आप राम-भक्ति के प्रति आकर्षित थे। अतः आप अपना जन्म-स्थान छोड़कर राम की जन्म-भूमि अयोध्या में चले आये। यहाँ पर रामलीला का मंचन बड़े ही भाव व श्रद्धा से होता देख आपके मन में राम का अभिनय करने की इच्छा हो आई। चूंकि आपका सुन्दर और प्रभावशाली व्यक्तित्व था और चेहरे पर तेज विद्यमान था आयोजकों ने आपका तत्क्षण चयन कर लिया। तब से ये रामलीला में राम की भूमिका निभाने लगे। अयोध्या के भक्तजनों के मन में इनके प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई और इनका नाम पंजाब प्रांत में जन्म लेने और भगवान राम की भूमिका निभाने से "पंजाबी भगवान" रख दिया। तब से आपका यही नाम अधिक प्रचलित हुआ व फिर आपने भी इसी नाम को अपना लिया।

अयोध्या की रामलीला में राम की भूमिका निभाते-निभाते आपके मन में राम भक्तिरूपी गंगा में अवगाहन करने की तीव्र इच्छा होने लगी। एतदर्थ आप अयोध्या छोड़कर चित्रकूट आ गये। यहाँ आकर आपने गुरु से दीक्षा ली और फिर मन्दाकिनी के तट पर जानकी कुण्ड के पास एक छोटी सी गुफा में अपना आसन जमाया। यहाँ नियम पूर्वक ध्यानरत रहते और नित्यप्रति कामदगिरि की परिक्रमा किया करते, चाहे कैसा भी मौसम रहा हो। चित्रकूट की पावन भूमि की तो बड़ी महिमा गाई गई है। यहाँ सभी देवताओं का निवास बताया है और यह बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों की तपस्थली रही है। अभी भी अत्रि-अनुसूया का आश्रम यहाँ पर स्थित है। रामजी के वनवास काल में यहाँ आने से पूर्व सारे देवता यहाँ आकर निवास करने लगे थे। श्रीराम जी तो जानकी और लक्ष्मण सहित इस कामदगिरि पर्वतराज पर साढ़े ग्यारह वर्ष पर्यन्त रहे और जब लीला संवरण कर चलने लगे तो "कामदगिरि" को (जिनको कामतानाथ भी बोलते हैं) यही आशीर्वाद दिया कि अब से जो व्यक्ति आपके दर्शन करेगा उसके सब विषाद दूर हो जायेंगे **"कामदगिरि भै राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत विषादा"**।। ऐसी मान्यता है कि श्री राम जी, सीता जी, लक्ष्मण जी एवं हनूमान जी आदि सभी देवता चित्रकूट में सदैव रमण करते हैं। इस सम्बन्ध में रहीम जी का एक प्रसिद्ध दोहा उद्धृत है:-

"चित्रकूट में रमरहे रहिमन अवध नरेस।
जापर विपदा परत है सो आवत एहि देस।"

संत तुलसीदास जी को सबसे पहले चित्रकूट में ही राम-लखन दोनों भाइयों के हनूमान जी महाराज के माध्यम से दर्शन हुए थे। इस संबंध में एक प्रसिद्ध दोहा उद्‌धृत है:–

"चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसी दास चंदन घिसें तिलक देत रघुवीर"॥

इस प्रकार, गुरुदेव की यहाँ की गहन तपस्या फलीभूत हुई। इनकी भक्ति से प्रसन्न होकर एक दिन हनुमान जी महाराज ने इन्हें दर्शन दिये और आशीर्वाद भी दिया। तत्पश्चात् महाराजश्री ने अपनी गुफा के निकट एक मंदिर बनवा कर उसमें हनुमान जी की एक भव्य और विशाल मूर्ति स्थापित कराई। साथ ही सीता राम जी, शालिग्राम जी एवं अपने गुरु महाराज की प्रतिमायें वहाँ स्थापित कराई। इन सब की प्राण-प्रतिष्ठा के उपरान्त यहाँ तब से ही नियम-पूर्वक पूजा, अर्चना, भजन कीर्त्तन और साथ ही सीताराम नाम महाराज का अखंड कीर्त्तन और रामायण जी का अखंड पाठ भी होता रहता है। आश्रम में और भी अनेक धार्मिक गतिविधियाँ चलती रहती हैं। आश्रम में ठहरने वाले साधु-संतों और ब्रह्मचारियों को भोजन, प्रसाद और वस्त्र आदि मिलते रहते हैं। इस प्रकार महाराजजी के प्रताप से आश्रम की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होती रही। बड़े-बड़े नेता, राज्यों के मुख्यमंत्री और भारत के प्रधानमंत्री तक महाराज जी का सुयश सुनकर उनके दर्शन और आशीर्वाद प्राप्त करने आया करते थे।

महाराज जी–एक सिंहावलोकन

–श्री वैष्णव भगवानदास जी, उत्तरकाशी

श्रीराम भक्ति की परम्परा में साकेतवासी श्री पञ्जाबी भगवान गणमान्य सन्तों में से एक थे। आप श्री अवध धाम के प्रसिद्ध विद्वान सन्तसमाजभूषण वेदान्ती श्री रामपदार्थ दासजी महाराज के कृपापात्र शिष्य हैं। श्रीगुरुदेव प्रदत्त श्रीरामचन्द्रदासजी महाराज आप का नाम है। आपका शरीर जन्म से पञ्जाब का था। बचपन में बहुत सुन्दर रूप होने के कारण श्री रामजी के स्वरूप धारण कराये जाते थे। इसलिए पञ्जाबी भगवान के नाम से विख्यात हुए। सन्तोंके मुख से यहां तक सुनने में आया कि झाँकी के समय आप के दिव्य स्वरूप का दर्शन करके जगन्नाथपुरी छोटी छत्ता के पीठाधीश्वर ख्यातिप्राप्त राज मान्य सन्त श्री गंगा दासजी महाराज भावावेश में आप को गोद में बैठा लेते थे। मृदु हास्य युक्त मधुर वाणी, मिलनसार व्यवहार और आगन्तुक सन्तों को उनके दण्डवत् करने से पहले ही स्वयं उनको दण्डवत करना आप का स्वाभाविक गुण था। भजन साधन व अनुष्ठान करने वाले सन्तों को सब प्रकार से सुविधा देते हुए सखावत् व्यवहार ने आप को जनप्रिय बना दिया। आप की सन्त सेवा, साधना, मर्यादित रहन-सहन और आचरण सब पूर्वाचार्यों की तरह था। आज भी सन्तों के मध्य में चर्चा चलने पर कृतज्ञ सन्त आप के गुणगान करते रहते हैं।

आप ने हिमाचल और चित्रकूट में रहकर दीर्घकाल तक साधना की। यह वह सिद्धभूमि है जहां साधकों को अदृश्य सिद्ध सन्तों की सहायता से सफलता मिलती है।

सिद्ध पुरुष जिस स्थान पर बैठकर साधना करते हैं वह स्थान सिद्ध भूमि बन जाती है। सिद्धभूमि सिद्धपुरुष के नाम के अनुसार अथवा किसी प्रकार के नियम के अधीन विभिन्न नाम और रूप लेकर श्री भगवान की विश्वलीला में अपना नाम करती है। सिद्ध भूमि की यही विशेषता है कि वह सदा सर्वत्र ही

अपने रूप में स्थित रहती है। वह जागतिक विचार से लौकिक प्रतीत होने पर भी वास्तव में अत्यन्त अलौकिक है। वह अखण्ड और अविभाज्य है। सब के अंश नहीं होते एवं सिद्ध पुरुष की इच्छानुसार अंशरूप में प्रतीत होने पर भी वह समग्र अखण्ड ही रहती है। यदि उस भूमि के अधिष्ठाता पुरुष किसी को आकृष्ट करने की इच्छा करें अथवा दर्शन देने के लिए उत्सुक हों तो लौकिक जगत में जिस किसी स्थान से वह प्राप्त हो जाती है। वह स्थूल नहीं है सूक्ष्म भी नहीं है। जब कि एक साथ स्थूल और सूक्ष्म दोनों ही है। सिद्ध भूमि अनेक हैं। शास्त्रों के अध्ययन से उन का परिचय मिल जाता है। तथा कोई कोई शक्तिशाली महात्मा अपने जीवन में इस दिशा में कुछ न कुछ प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करते हैं। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार अनास्त्रव धातु में भी विभिन्न बौद्धक्षेत्र और दिव्य धाम विद्यमान है। पृथ्वी पर ऊर्ध्व लोक के प्रायः समस्त स्थान आँशिक रूप में अवतीर्ण या प्रकट हैं। इन सभी अंशों का अवलम्बन करते हुए थोड़े प्रयास से मूल स्थान को प्रकट किया जा सकता है। इसलिए हमारे सुपरिचित वृन्दावन से भी नित्य वृन्दावन का पता प्राप्त हो जाता है। तथा जागतिक दृष्टि गोचर काशी से भी शंकर जी के त्रिशूल पर प्रतिष्ठित नित्य काशी का दर्शन प्राप्त किया जा सकता है।

उपलब्धि की लम्बी रेखा वाले–श्री पंजाबी बाबा

–महामण्डलेश्वर श्री जमुनादासजी महाराज,
सतुआबाबा, काशी

यह संस्मरण लिखकर हम साकेतवासी श्री 1008 श्री पंजाबी भगवान जी के प्रति अपनी अगाध श्रद्धा व्यक्त करते हैं। श्री महाराज जी का परिचय वे स्वयं ही थे। कहा गया है कि–"उत्तमा आत्मना ख्याता"।

स्वयं की प्रसिद्धि से ही जिनकी प्रसिद्धि हो वह उत्तम कोटि के मानव होते हैं। जब महाराज जी में हनूमान धारा के 21 वर्षों की गहन तपस्या कर चित्रकूटधाम (जानकी कुण्ड) लौटे तो एक दिव्य आभा मण्डल पूरे चित्रकूट धाम में व्याप्त हो चुकी थी। वे प्रायः ख्याति और प्रशंसा से दूर रहना चाहते थे फिर भी अग्नि की दाहकत को कौन झुठला सकता है। नगर–नगर, देश–प्रदेश ख्याति अबाध गति से फैलने लगी। दुःखार्त प्राणी वहाँ पहुँचते महाराज जी का दर्शन कर अपनी व्यथा सुनाते, कामना करते तो महाराज जी हनूमान जी की शरण में भेजकर उसका उद्धार करते थे।

महाराज जी नियमपूर्वक भजन का ही महत्त्व देते थे। अनेक विपरीत वातावरण में भी वे समय से ही अपना भजन–पूजन सम्पंन्न किया करते थे। आपके सम्पर्क में चाहे सन्त महानुभाव आएँ या दरिद्रनारायण सभी के लिए समान भाव आपके मन में था–

"शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः" यह गीता वचन आपके जीवन में साक्षात् दृष्टिगोचर होती रही। जीवन के आतप से संतप्त व्यक्ति आपकी वटवृक्ष की भाँति छाया पाकर अत्यन्त संतुष्ट रहे।

हम समस्त परिवार के लोग एवं धार्मिक बन्धु आपकी उपलब्धियों की लम्बी रेखा को लघु कलेवर में अंकित कर सकें ऐसी क्षमता अपने आप में पाते नहीं। हम श्रद्धाभाव प्रकट करते हैं कि ऐसे महामानव देह रहित होकर भी अपनी आत्मा से हमेशा सबको आशीर्वाद देते रहेंगे।

हनूमान जी अनन्य-श्री महाराज जी

-श्री मोरारी बापू, गुजरात

मोक्षो भवति न वेति संशयोच्युत सेविनाम्।
असंशयो हि तद्भक्त परिचर्या रतात्मनाम्॥

"राम ते अधिक रामकर दासा" इस मानस के निर्णयात्मक वचन को अपने जीवन का परम पाथेय बनाकर भक्त वाञ्छाकल्पतरु हनूमान जी की उपासना को ही परम साधन मानने वाले पूज्य श्री पंजाबी भगवान जी महाराज ने आजीवन भागवत सेवा को ही परमलक्ष्य माना। सामान्यतः देखा जाता है कि लंका प्रवेश के लिए भगवान राम को सेतुबन्ध का आश्रय लेना पड़ा वहीं भगवान के नाम एवं प्रभाव का आश्रय लेकर हनूमान जी शतयोजन समुद्र को लांघ जाते हैं। सम्पूर्ण श्रीराम परिकर हनूमान जी के ऋणी हैं। अहिरावण से स्वयं प्रभु के, प्रभु के वियोग में मृत्यु को वरण के लिए उद्यत श्री सीता जी को भावसंदेश सुनाकर, श्री लक्ष्मण जी को यथा समय सञ्जीवनी प्राप्त कराकर तथा भगवत्प्रतीक्षारत भरत को भगवदागमन का संदेश सुनाकर हनूमान जी ने सबकी रक्षा की। अतः ये रामायण के पञ्चप्राण है। जैसे माँ के भोजन से गर्भस्थ शिशु का पोषण स्वयं होता है ठीक वैसी ही हनूमान जी की उपासना से सम्पूर्ण राम परिकर तथा प्रमुख देवों की उपासना स्वयं हो जाती है। अतः ये मूर्तिमान राममन्दिर माने जाते हैं।

"जासु हृदय आगार वसहिं राम सर चाप धर"

उपनिषदों में सनकादि ऋषियों को भी रामतत्वोपदेष्य तथा भक्त-प्रतिपालनार्थ सर्वदा जागरूक के रूप में हनूमान जी का वर्णन मिलता है। उनकी प्रतिज्ञा है-

ऐहिके समनुप्राप्ते स्मरेन् मां रामसेवकम्।
सर्वदा जागरूकोऽस्मि रामकार्ये धुरन्धरः॥

जिसे अघटित घटन सुघटविघटन हनूमान जी का आश्रय प्राप्त है उसके लिए कुछ भी असाध्य नहीं है।

जगदम्बा की कृपा से हनूमान जी अष्ट सिद्ध, नव निधि के दाता हैं। इनके चरण के आश्रय से ही सुग्रीव, विभीषणादि को सर्वार्थसिद्धि प्राप्त हुई। अतः हनूमान जी के इसी अचिन्त्य प्रभाव एवं परमकारुणिक स्वभाव के कारण भक्त जन हनूमान का ही आश्रय ग्रहण करते हैं तथा उनके अमोघ प्रसाद से लौकिक एवं पारलौकिक अभ्युदय को प्राप्त करते हैं।

इसी भाव के अनुरूप श्री महाराज जी ने भक्त वाञ्छाकल्पतरु श्री मारुत नन्दन के मंगलमय स्वरूप को अर्चा विग्रह के रूप में स्थापित कर तथा उनके अत्यन्त प्रिय अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तन के क्रम को उनके समक्ष अंक्षुण्ण रखा, तथा अपने शिष्य जनों को भी परम विश्वस्त आश्रय के रूप में राम नाम संकीर्तन की प्रेरणा दी है।

उस आईने में कितने ही चेहरे सँवर गये

-शोभित राजन, मुम्बई

हे प्रभु! तुझसे बहुत बड़ी ये नादानी हुई
फूल वो तोड़ा कि भव्य उद्यान में विरानी हुई,

यूँ तो मृत्यु जीवन का अन्तिम सोपान है और शाश्वत सत्य भी। फिर भी इसे सहजता से स्वीकार नहीं किया जा सकता और विशेषकर उन परिस्थितियों में जबकि हमारा कोई अपना है। पूज्य महाराज जी के सन्दर्भ में अपनत्व के दायरे को किसी हद में नहीं बाँधा जा सकता। वे एक विशाल सागर थे जिसमें से हर कोई अपनी आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार रत्न लेकर चला जाता था।

वे एक ऐसे महापुरुष थे जो निरन्तर मुस्कुराते रहते थे, कभी चिन्ता, विषाद या पीड़ा की रेखाएँ उनके मस्तक पर नहीं देखी। निष्कलंक सेवाभावी, भक्ति की साकार मूर्ति, जीवन संग्राम के अजेय योद्धा, भारतीय सभ्यता-संस्कृति की जीती जागती मिशाल-ऐसे महामानव थे श्री पंजाबी भगवान जी महाराज।

"कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" इस गीता के सन्देश को जीवन का आधार मानकर आपने साधु सन्तों की सेवा व परमार्थ कार्यों को जीवन का लक्ष्य माना।

जन-जन के आदर्श इस दिव्य पुरुष की अन्तिम यात्रा जीवनभर हृदय पटल से विस्मृत नहीं हो सकती। उस समय हजारों-हजार की संख्या में उनके अनुयायी भक्त-संत अन्तिम विदा देने के लिए उमड़ पड़े, आँसुओं का सैलाब रुक नहीं पा रहा था। सभी की धड़कने असामान्य थी। कोई विश्वास नहीं कर पा रहा था कि ये वही महापुरुष हैं जो कल तक हमारे हरेक सुख-दुख में साथ थे। उनके चले जाने से वज्रपात केवल आश्रम पर ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मानव समुदाय पर हुआ। न जाने कितने बे सहारों का सहारा चला गया, न जाने कितने यतीमों का मसीहा उठ गया, न जाने कितनी संस्थाओं का पालक चला गया और

न जाने कितने प्राणियों का पोषक उनसे विछुड़ गया। भीगी आखें और शुष्क अंधरों से विधाता के इस क्रूर निर्णय पर बेइन्तहा आहें निकल रही थीं। ऐसे महामानव पूज्य श्री पंजाबी भगवान जी महाराज के महाप्रयाण से जो रिक्तता पैदा हुई वह कभी पूरा नहीं हो सकती है।

श्रद्धा से नतमस्तक होकर दिल की भावनाओं को बेजुबान शब्दों के रूप में अभिव्यक्त करके ही उन्हें श्रद्धाञ्जलि नहीं दी जा सकती। वास्तविक श्रद्धाञ्जलि यह होगी कि हम उनके बताए मार्ग पर चलकर अपना जीवन सेवामय, त्यागमय एवं साधनामय बनावें।

जिस आइने से कितने ही चेहरे संवर गये।
दुःख दर्द का हाय! अब वो आइना नहीं रहा।।

उन-सा नहीं देखा

—डॉ० अशोक कुमार गुप्ता, ग्वालियर

यूँ तो दुनियाँ में लाखों लोग प्रतिदिन जन्म लेते हैं और विदा हो जाते हैं, उनके नामों-निशान तक मिट जाते हैं, पर कुछ लोग ऐसे भी हैं जो हमेशा-हमेशा के लिए अमर हो जाते हैं। हाँ, ऐसे ही सन्त महापुरुष थे हमारे पूज्य श्री पंजाबी भगवान जी महाराज।

०6 मार्च 2००6 को दो सूर्य एक साथ अस्त हो गये। एक सूर्य तो प्रतिदिन की तरह किन्तु एक अचानक। सुबह हर दिन की भाँति सूर्य तो निकला पर उसमें आज वो गर्मी नहीं थी और इससे पहले कि वह अपनी किरणें पूरी तरह फैला पाता कि दूसरा "सूरज" अस्त हो गया हमेशा-हमेशा के लिए।

उनकी नजर ऐसी थी कि सभी के हृदय में स्थान बना लें। उनसे बात करने में किसी को भी अपने छोटे और बड़े होने का एहसास तक नहीं होता था। व्यक्तित्व ऐसा था कि श्रद्धा से सिर स्वतः ही उनके आगे झुक जाया करता था।

विधि का विधान अटल है, होनी बड़ी बलवान है, होकर ही रहती है। यहाँ अच्छे लोग मानो मिलते ही विछुड़ने के लिए है।

हर दिन लाखों लोग जन्म लेते रहेंगे, फना होते रहेंगे, गंगा-यमुना बहती रहेगी, पक्षी मधुर गान करते रहेंगे, सूरज-चाँद निकलते-डूबते रहेंगे, बहारें आती जाती रहेगी, जिन्दगी अपनी मंजिलें तय करती रहेगी पर यह "कमी" हमेशा-हमेशा अखरती रहेगी। उनके कार्य एवं आचरण प्रेरणा श्रोत बने रहेंगे और हर दिल उन्हें शत-शत प्रणाम करता रहेगा।

"यूँ तो दुनिया में और भी हैं सुखनवर बहुत अच्छे,
पर उन-सा नहीं देखा-वास्तव में नहीं देखा।

सन्त समाज के रत्न–श्री पंजाबी भगवान

–श्री राजेश मूंदड़ा, कोलकाता

लेखनी ने कल्पना भी नहीं की थी कि उसे इस अप्रत्याशित लेखन कार्य हेतु किसी अशान्त, अदृश्य विधि-विधान द्वारा अनिवार्यतः विवश कर दिया जाएगा। सन्त समाज का प्रत्येक घटक मर्माहत हो उठा। जैसे ही यह दुःखद सूचना मिली सभी लोग स्तब्ध रह गये। उनका व्यक्तित्व, कृतित्व सामने खड़ा दिखाई देने लगा। क्या ऊँचाई थी और क्या गहराई? सहजता और सौम्यता उदारता और शालीनता न जाने कितनी दैवी सम्पदा अपने अन्तर में समेटे थे। वेद की वह ऋचा मेरे मन मस्तिष्क में घूम गयी जिसमें मानव मात्र को निर्देशित किया गया है कि सौ हाथों से कमाओ हजार हाथों से बाँटो। न जाने कितनी धार्मिक, सामाजिक व राष्ट्रिय संस्थाएँ उनकी इस विशेषताओं की साक्षी हैं।

सहज व्यक्तित्व के धनी और उदार कृतित्त्व के प्रेरक के अनायास हम सब से विछुड़ जाने से पूरे वैष्णव समाज, भक्त मण्डली को जो हानि हुई है वह अपूरणीय है। वे तो प्रभु के धाम को पधार गये क्योंकि हर लोकसेवी को आत्म संतोष, जनश्रद्धा और दिव्य अनुदान के विविध उपहार मिलते ही रहते हैं वे इस सम्पदा के धनी हैं और रहेंगे।

आइए! हम हताशा को छोड़ गीता की इस प्रेरणा–

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय,
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

से प्रेरित होकर महाराज जी आज भी प्रत्येक कार्य के साक्षी है, मानकर उनका आशीर्वाद हमेशा प्राप्त करते रहेंगे।

ऐसी करनी कर चलो

संजय-आरती सिंघल, नई दिल्ली

गंगा की गोद में बसी काशी के अस्सी घाट पर अवस्थित श्री राम जानकी मठ में महाराज जी का 1997 से स्थायी निवास हो गया। चित्रकूट आश्रम में विगत 40 वर्षों से अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तन, मानस पाठ के साथ ही विभिन्न उदात्त कार्य जो लोकमंगलकारी होते हैं अहर्निश श्री महाराज जी के आशीर्वाद से चलने वाली सुप्रवृत्तियाँ हैं। वही नाँदी में भी हनूमान जी के समक्ष वर्षों से अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तन चल रहा है।

काशी आकर सर्वप्रथम उन्होंने अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तन को ही शुरू करवाया फिर अखण्ड मानस पाठ का भी आयोजन शुरू हुआ, मध्य-मध्य में स्वयं महाराज जी संकीर्तन में पधार कर उस मण्डप को भव्यता प्रदान करते थे। इन सबके प्रति मूल कारण यह है कि श्री महाराज जी भगवान राम के अनन्य निष्कलुष भक्त थे। हनूमान जी के साथ तो उनका अविनाभाव सम्बन्ध हो गया था और हनूमान जी को श्रीराम से अधिक रामनाम प्रिय होता है इसी कारण चित्रकूट, नाँदी और वाराणसी में हनूमान जी की प्रतिष्ठा एवं अखण्ड राम नाम संकीर्तन महायज्ञ प्रारम्भ कराया गया।

सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने वस करि राखे रामू।।

आज वाराणसी में अखण्ड नाम संकीर्तन के 10 वर्ष हो चुके हैं। जिसके प्रभाव से भगवद्मन्दिर में दिव्य आभा का सञ्चार हो रहा है। वहाँ का कण-कण जैसे राममय.हो गया हो। बहुधा देखा जाता है कि फल को लक्ष्य करके मानव किसी कार्य में प्रवृत्त होता है किन्तु वह महामानव है जो भगवान की प्रीति को ही अपना लक्ष्य मान लिया हो। सूत्र रूप में महाराज जी बहुधा कहा करते थे-"**जैसा खाये अन्न वैसा होवे मन**"। एतावता उनकी दैनिक साधना, दिनचर्या तथा व्यवहार का कुछ भी अंश मानव अपने जीवन में उतार ले तो उसका जीवन धन्य ही नहीं अनुकरणीय एवं श्लाघ्य हो जाएगा। वह श्रद्धेय बन जाएगा, प्रातः स्मरणीय हो जाएगा। उनके दिव्य गुणों की आभा हम सभी को आलोकित करे यही मेरी परम प्रभु श्री राम जी से प्रार्थना है।

महाराज जी के साथ दो पल

-श्री सीताराम दास-स्वर्गाश्रम, पौड़ी गढ़वाल

वंदऊँ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नर रूप हरि।
महामोह तम पुञ्ज जासु बचन रवि कर निकर॥

श्री सद्‌गुरुदेव भगवान का स्मरण-लिखना ये तुच्छ दास के लिए अति कठिन कार्य है। इतना ही कह सकता हूँ कि इस चौपाई में श्री गोस्वामी जी महाराज ने जो वर्णन किया है पूर्णतः दास के जीवन में सही निकला, पूर्वाश्रम से निकल कर सद्‌गुरु की खोज में बहुत जगह भटकता रहा, इसी परिप्रेक्ष्य में काशी, जगन्नाथ पुरी, अयोध्या, वृन्दावन धाम पहुंचा। श्री गोरे दाऊ जी आश्रम में वयोवृद्ध संत श्री रामदास जी महाराज से भेंट हुई। एक दिन दास अपने मन की बात उनके सामने रखा, मैं श्री सीताराम जी की उपासना करना चाहता हूँ। आप कृपया अच्छा रामोपासक का पता बताइयें, उन्होंने दो-तीन ख्यातिप्राप्त संतों का नाम बताया।

मैंने पूछा इसमें किसके पास जाऊँ। आपने मेरा भाव समझकर के मुझको श्री चित्रकूट धाम में विराजमान तपोमूर्ति परमश्रद्धेय पूज्यपाद श्री पंजाबी भगवान जी महाराज के पास जाने की सलाह दी। अगले दिन ही चित्रकूट के लिए प्रस्थान किया, चित्रकूट पहुंच कर श्री कामतानाथ जी की परिक्रमा करके मन्दाकिनी जी के तट पर स्थित जानकी कुण्ड श्री वेदान्ती आश्रम पहुंचा। मनोरम आश्रम देखकर मन पुलकित हुआ, अपार शान्ति का वातावरण था। मैनें वहां श्री महाराज ज़ी के बारे में पता किया तो बताया कि श्री महाराज जी दो-तीन दिन के लिए बाहर गये हुये हैं। उनकी प्रतीक्षा में मैं वहां ठहरा, तीन दिन बाद श्री महाराज जी पधारे मैं उनके दर्शन के लिए खड़ा था, पहली दृष्टि में ही मेरे मन में अलौकिक शन्ति का अनुभव हुआ। उनका सुकोमल जाज्वल शरीर कृपा समुद्र रूपी नयनों, मन्द मुस्कराहट और दिव्य परिवेश मेरे मन को छू गया, एक टक उनको देखता खड़ा था कि अचानक उनकी आवाज ने मुझको जगाया, मैने

साष्टांग प्रणाम किया, श्री महाराज जी ने मेरे आने का अभिप्राय पूछा, मैंने सविनय निवेदन किया कि ये तुच्छ दास को आप अपने शरण में लेने की कृपा करें। अपने चिर परिचित विनोदभाव से उन्होंने समझाया कि साधु जीवन बहुत कठिन है आवेश में बनने के लिए नहीं है। उसके लिए अपार धैर्य, वैराग्य आदि की जरूरत है। मैं तुम्हारे लिए ऐसी व्यवस्था कर दूंगा कि तुम कुछ व्यवसाय इत्यादि कार्य प्रारम्भ करो और जीवन सुख से जीओ, उनके जवाब से दुःखी होकर अपने प्रारब्ध को कोसते हुए मैं बैठा था, श्री महाराज जी हमको देखते हुए मुस्कराते रहे और कुछ देर बाद बोले अच्छा बेटा तुम यहां पर रुक जाओ और आश्रम का कुछ कैंकर्य करके वृद्ध महात्माओं की सेवा करते रहो बाकि समय आने पर देखा जायेगा। मुझको बहुत राहत मिली। जैसे मैं आश्रम में रहना शुरू किया इस अवसर पर मैंने महाराज जी के कुछ सद्गुणों से परिचित हुआ। अभ्यागत महात्माओं के प्रति उनकी उदारता, दयालुता अपार थी। किसी भी बीमार महात्मा का इलाज करना, पथ्य की व्यवस्था करना, सेवा कराना श्री महाराज जी की विशेषता थी।

इसी सेवा में कृपा करके उन्होंने इस दास को भी लगाया। इससे श्री महाराज जी को थोड़ा नजदीक से देखने का मौका मिला। सादगी उनके जीवन की विशेषता थी। आश्रम में बहुमूल्य अनेक पदार्थ आते थे जिनमे विभिन्न प्रकार के वस्त्रों में से श्री महाराज जी सूती वस्त्र ही ग्रहण करते थे।

भगवत स्मरण बिना उनका दर्शन दुर्लभ था। गर्मियों में यदा कदा बाहर एक पटरा बिछाकर ईंट का तकिया बनाकर बाहर हवा में लेटे हुए उनके रूप आज भी नयनों में हैं। श्री महाराज जी के संज्ञान में होते हुए कोई भी महात्मा कहीं भी भजन साधना करता हो उसके लिए यथोचित व्यवस्था करते थे। अनुष्ठान (साधना) करने वालों के प्रति विशेष ध्यान था व बड़े प्रसन्न होते थे। श्री महाराज बहुत कम सोते थे, रात में कभी कभार बाहर आते थे, उनके चेहरे में निद्रा आलस्य कभी नहीं देखा, सबको भजन करने के लिए विशेष जोर देते थे।

ये सब बातें श्री महाराज जी के प्रति मेरी श्रद्धा को सुदृढ़ करती गई। तीन साल के बाद गुरु पूर्णिमा के दिन श्री गुरुदेव भगवान ने इस तुच्छ को कृपा करके अपना दास बनाया यह मेरे जीवन का असुलभ निमिस था। दीक्षांत उपदेश में दास से कहे कि साधक को रात में भोजन कम करना चाहिए व सुबह जल्दी

उठकर भजन करना चाहिए, भजन में आलस्य मत करना, इस प्रकार उनके सान्निध्य में भजन करते रहने पर मुझे एक बात समझ में आयी कि श्री महांराज दूसरों के मन की स्थिति बगैर बताए समझ लेते थे। ऐसा अनुभव मुझ दास को और अनेक साधकों को बहुत बार हुआ।

श्री गुरुदेव भगवान का समुचित, सुदृढ, सुलझा हुआ जीवन था, वे अपने स्थिति में प्रारम्भ से अन्त तक स्थित रहे। स्वरूप बनते समय सिद्ध सन्तों की गोद में और राजा महाराजाओं की गोद में समाज सेवी और बड़े-बड़े अधिकारियों से जुड़ते हुए भी वैराग्य पूर्ण जीवन जीते हुये हम सब भी देखे। अगर वे चाहते जितना प्रभावी समाज उनसे जुड़ा था बहुत विस्तार कर सकते थे। गीता का यह श्लोक–"पद्म पत्रमिवाम्भसा" महाराज जी के जीवन का अभिप्राय था।

सन्त समाज के कलश-पुरुष श्री पंजाबी भगवान जी

-डॉ० महानन्द झा, नई दिल्ली

परमात्मा मानव की सृष्टि जिस विशेष प्रयोजन से करता है उसमें महत्वपूर्ण है मानव सेवा। सज्जन सुलभ संवेदना के साथ प्राणीमात्र के समुत्कर्ष के लिए अपना तथा अपने संसाधनों के पूर्ण विनियोग में ही साधुता की सार्थकता मानी गई है। इसी से मानव का जीवन सर्वाभिनन्दनीय बनता है। कर्त्तव्य पालन्, धर्मरक्षण, सदाचार-परिपालन, परोपकार का वरण, निःस्वार्थ सेवा में सम्पूर्ण जीवन का समर्पण असिधारा व्रत के समान कठिन तप है। इस प्रकार के लोकमंगल व्रत के सम्पादन में विरक्त वैष्णव सन्तों की एक प्रशस्त परम्परा रही है। **"भजे जौन राम तामे आवे गुण राम के"** इस कथन के अनुसार सन्तों में भजन की निरन्तरता से उपास्य के दिव्यगुण धीरे-धीरे संक्रमित होने लगते हैं। ऐसे ही अनुकरणीय सद्गुणों के परमपुञ्ज के रूप में प्रसिद्ध व्यक्तियों में सन्त प्रवर श्री पंजाबी भगवान जी महाराज का नाम अन्यतम है।

संसार में वैसे विरले ही महापुरुष होते हैं जो अपने विशेष प्रभाव, चरित्र, औदार्य तथा भगवत्प्राप्त गुणों का मानवता को जीवन प्रदान करने के लिए विनियोग करते हैं। गीता में भगवान् ने मानवता के लिए वरदान स्वरूप ऐसे अविस्मरणीय व्यक्तित्व को अपनी विभूति कहकर समादर प्रदान किया है।

यद् यद् विभूतिमत्सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽश संभवम्॥

भगवत्संकल्प से इस संसार में ऐसे लोकोत्तरपुरुष भगवदीय कार्य का सम्पादन करते हैं, महाराज श्री में मधुरता, सरलता, निरभिमानता के साथ-साथ हृदयाकर्षण की अपूर्वशक्ति विद्यमान थी। उन्हें किसी ने विलक्षण साधु तो किसी ने नैतिकता के उज्जवलतम रूप में दर्शन किया। वस्तुतः मैत्री, करुणा व मुदिता के प्रतिमूर्ति महाराज श्री में जीवन निर्माणकारी आचार-विचार की दिव्य चारुता का दर्शन होता है। उनकी प्रत्येक चेष्टा मानवता को जीवन प्रदान करने वाली रही।

साधुता से परिपूर्ण वैष्णवता, निसर्ग विरक्तता एवं भाव की उदात्तता का चित्ताकर्षक पावन उन्मेष उनकी उपासना पद्धति के अनुरूप ही था। उनके चित्त की विशालता एक ओर मधुरतम वैष्णवभाव की सृष्टि करती थी तो दूसरी ओर आश्रितजनों के हृदय में सद्भावना की पुष्टि करती थी।

उनके तपोमय जीवन के स्मरण से न केवल चित्त में भगवद्भाव दृढ़ होता है अपितु साधु, ब्राह्मण, अतिथि, गुरुजनों के प्रति भक्तिपूर्ण सम्मान भाव का सञ्चार होता है। उनकी सहृदयता से सम्पूर्ण वैष्णव समाज परिचित है, उनकी ऋजुता साधु सुलभ उन्मुक्तता को व्यक्त करती थी तो कार्यपटुता कैंकर्य निष्ठा को। वे न केवल अपने परमाराध्य के नाम, रूप, लीला एवं धाम के रसिक थे अपितु सांधु सेवा तो उनके जीवन का सर्वस्व ही था। अपने सिद्धान्त के प्रति सुदृढ़ता तथा आश्रितों के प्रति मृदुता जैसे परस्पर विरुद्ध गुण उनके विलक्षण माहात्म्यलक्षण को प्रभावित करते हैं। उनके द्वारा संस्थापित विविध मठ जो भगवद्भक्ति एवं धार्मिक संस्कार के उदार वितरण तथ्य साधु, गौ, ब्राह्मण की सेवा के लिए अहर्निश समर्पित है, साथ ही मानवता की सेवा के लिए प्रकल्पित विविध सामाजिक संस्थान, धर्म एवं संस्कृति की रक्षा के लिए निर्मित संस्कृत पाठशाला शास्त्र संरक्षण के प्रति कटिबद्ध है। महाराज जी के सत्संकल्प से ये आज भी अपने महनीय लक्ष्य की ओर निर्बाध रूप से अग्रसर है।

साधुता एवं परमार्थ की कसौटी पर कसा हुआ निखरा तपोमय अनवद्य जीवन के धनी महाराज श्री में वैष्णवीय संस्करों के प्रति सुदृढ़ आस्था थी। अपने स्निग्ध गुणों के कारण भक्तजनों के हृदय सम्राट महाराज श्री में संयोजन–व्यवस्थापन की कुशलता के साथ अपूर्व आत्मीयभाव संचार करने की क्षमता थी। वस्तुतः इनकी साधुता से आकृष्ट समाज सन्निधि पाकर प्रीतिपूर्वक अपना सर्वस्व समर्पण कर सदा–सदा के लिए इनके हो जाते थे। आपने श्री राम जानकी मठ, अस्सी वाराणसी, जानकी कुण्ड, चित्रकूटधाम, नाँदी, चित्रकूट में विगत 4० वर्षों से भगवन्नाम संकीर्तन, अखण्ड राम चरितमानस पाठ एवं श्री हनूमान जी के मन्दिर में अखण्ड दीपक जलाने की व्यवस्था को न केवल अनिवार्य किया अपितु भविष्य में भी इसकी अक्षुण्णता के लिए सदा प्रेरित करते रहे। महाराज श्री हनूमान जी के अचिंत्य सामर्थ्यपर विश्वास करने का आग्रह करते हुए उनकी उपासना पर अधिक बल देते थे। आपने निःस्वार्थ भाव से मानवता की सेवा के लिए अनेक महनीय कार्य किए जिसे मानव समाज चिरकाल तक स्मरण करता

रहेगा। वे अपनी शिष्य मण्डली को आजीवन भगवद्भक्ति के साथ परस्पर सौहार्द तथा लोकसेवा द्वारा सार्थक जीवन जीने की प्रेरणा देते रहे।

महाराज श्री की मनस्विता अपूर्व थी, जिससे वे आत्म विश्वास के साथ पीड़ित एवं दुर्बल की सहायता को अपने जीवन का पाथेय बनाया।

स्वरूपानुरूप गुणवत्ता व्यक्ति को उत्कर्ष प्रदान करती है, लोक कल्याण के प्रति अभिनिवेश के कारण वे सदा समर्पित व्यक्तित्व के रूप में स्मरण किए जाते रहेंगे। उनकी महनीय प्रकृति, परमार्थ की मर्मज्ञता के साथ उनकी व्यवहार पटुता की युति मणिकाञ्चन संयोग के समान स्पृहणीय थी। उनकी त्यागवृत्ति एवं साधुता की गरिमा महामानवता प्रकट करती थी। प्राप्त वैभव का लोक हित में विनियोग की भावना, वैराग्यपूर्ण वैष्णवजीवन का सार्थक समुत्कर्ष माना जाता है। महाराज श्री ने न केवल एक महनीय गौरवशाली विरक्त वैष्णव परम्परा के मंगलभावों के संवाहक थे अपितु लोकमंगल आदर्श, शाश्वत सिद्धान्त एवं तपोमय आचरण के जीवन्त प्रतिमान थे। **"परोपकाराय सतां विभूतयः"** इस उक्ति को वे जीवन में चरितार्थ करते रहे तथा अपने कल्याणगुणों के कारण समाज में सुख-शान्ति एवं भक्ति की भागीरथी को प्रवाहित करते रहे।

मानवता के उज्ज्वलरूप में विद्यमान श्री महाराज जी लोकाराधन को सामने रखकर मानव जीवन में आत्मकल्याणार्थ साहस उत्साह, प्रगति, भक्ति आदि सद्गुणों के कारण सर्वविदित होते रहे हैं। वे उन्मुक्त पवन बनकर न केवल भगवद्भाव रूपी सौरभ का प्रसार करते रहे अपितु राम सिन्धु से जीवन प्राप्त कर सघन जलद बनकर उदार वर्षण से मानव समाज के आन्तर एवं बाह्य आतप सन्ताप को दूर करते रहे।

राम सिन्धु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि सन्त समीरा॥

तुलसीदास जी की यह उक्ति महाराज श्री में पूर्णतः चरितार्थ होती थी। परमात्मा ने भक्त समुदाय के स्नेह सुधानिधि श्री महाराज जी को उन सकल सद्गुणों से मण्डित कर मानवता की सेवा के लिए भेजा था जिनका आदर्श जीवन प्रत्येक साधक के लिए प्रकाश स्तम्भ के समान सर्वदा आलोक प्रदान करता रहेगा।

जीवन के आधार-गुरुदेवजी

-श्री पुरुषोत्तम पूर्णिमा पारोलिया, मुम्बई

हे मेरे सद्गुरु मेरे भगवान मेरे ज़ीवन के एक मात्र आधार। मेरे जीवन में आपका आना ही सार्थक लगा और जो कुछ इस जीवन में घटा या घट रहा है वह बस आपकी महती कृपा की परिणति ही हैं जिसमें सराबोर हो कर मैं झूम-झूम कर गा उठती हूँ।

"न मिलता तू अगर मुझको ये तन मिट्टी ही कहलाती"

लेकिन जब मैं अपने को कुछ अकेला पाती हूँ तो मुझे आप बहुत याद आते हैं। आप का वह आभास आप का चित्र बन जाता है जो मुझे स्वतः ही आप के सान्निध्य का अनुभव कराता है। वह बीते हुए क्षण जो मैने आपकी गोद में नवजात बन कर जीये हैं बरबस ही, आँसूँ बन कर चरणों में अर्पित करते हैं।

विशेष कर मैं अपनी ही बात कर सकती हूँ क्योंकि जो कुछ मैंने अपने भगवान्, सद्गुरु सर्वस्व के जाप से पाया उसे मैंने कहीं स्वार्थी बन कर अकेले जिया भी है, और उसका स्वाद उस गूँगे के गुड़ के समान था जिसको केवल उसकी माँ ही भाषा में जानती हैं। सद्गुरु का शरीर आज हम लोगों के साथ नहीं यह वेदना, तड़प मैं आज भी महसूस करती हूँ मैं अपने को समझदार नहीं कहती और न समझ पाती कि गुरु शरीर नहीं है वह निर्गुण निराकार है। लेकिन नहीं मुझे अपने गुरु का शरीर भी बहुत प्यारा था। उनका वह वात्सल्य उनका भगवत् स्वरूप, उनका वह महानतम् विराट् हस्त जो हमेशा मेरे ऊपर रहा मैं नहीं भूल पाती हाथ जोड़ कर यह भीख जरूर माँगती हूँ और जब होश आता है कि आप व्यापक हैं, सर्वशक्तिमान हैं, अन्तर्यामी हैं तो श्रद्धा के सुमन शब्दों में पिरो कर प्रार्थना करती हूँ।

"स्वामी मोहे न विसारियो लाख लोग मिलज़ाए
हमसे तुमको बहुत है तुम से हम को नाथ

कैसी तबियत है दीपावली में चित्रकूट में मेला रहता है बहुत भीड़ रहती है जानकी कुण्ड अस्पताल से भी महिला डाक्टर दीपावली को छुट्टी पर चली जाती है उनसे बात कर लेना। हम लोग सीधे सद्गुरु सेवा संघ के मुख्य चिकित्सा अधिकारी डा० बी० के० जैन जी के पास गए उनसे पूछा कि डा० साहब क्या दीपावली में डिलवरी होने पर यहाँ पेसेन्ट को कोई दिक्कत तो नहीं होगी। लेडी डा० रहेगी या नहीं? डा० साहब ने कहा कि लेडी डा० से स्वयं भी बात कर लो कहीं उनका कोई प्रोग्राम तो नहीं है। फिर मैं और मेरी धर्मपत्नी डा० वेंकटेंश एवं उनकी पत्नी डा० मनीषा के पास गए और सारी बात बताई उन्होंने रूपा का चेक अप किया और दीपावली से 7–8 दिन पूर्व की तारीख दी। मैंने उनसे कहा कि डिलवरी ठीक दीपावली के दिन ही होगी आप रहेंगे या नहीं उन्होंने जब हम लोगों को इतना आश्वस्त देखा तो कहा कि ठीक है हम लोग दीपावली में अस्पताल में रहेगें। उन्हें यकीन था कि डिलेवरी तो 7–8 दिन पूर्व हो ही जाएगी। समय बीतता गया इस बीच इलाहाबाद के डाक्टर ने एक माह पूर्व तुरन्त आपरेशन की सलाह दी मैंने गुरुदेव को इलाहाबाद से फोन पर बताया उन्होंने बड़ी सहजता से कहा कि बेटी को 2–3 दिन इलाहाबाद में आराम करा कर ले आना। मैंने रूपा को अपनी छोटी बहन सीमा के यहाँ दो दिन आराम कराकर वापस कर्वी ले आया और एक माह बाद ठीक दीपावली के दिन 12 बजे रूपा को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई मेरा पूरा परिवार–खानदान खुश हो गया, चारों तरफ खुशी फैल गई। आज भी जानकी कुण्ड के डाक्टर इस घटना को याद करते हैं। पूज्यगुरुदेव की कृपा इन सभी भक्तों पर सदा बरसती रही है और बरसती रहेगी यही मेरा पूर्ण विश्वास है।

फिर भी मैं अपने सद्‌गुरु के बारे में लिख नहीं पाई वह अथाह हैं सागर सा, वह अनन्त हैं आकाश सा, वह स्वच्छ हैं वह दानी हैं कुबेर सा और हम सब के साथ ऐसे रहता है जैसे मेरे श्वास और प्राण।

कुछ शब्द श्रद्धा सुमन के रूप में उनके चरणों में प्रेषित है।

आपके चरणों में मेरे व सभी परिवार को मति हो, रति हो, भक्ति हो, श्रद्धा हो, निष्ठा हो, आस्था हो, विश्वास हो, सदा आपके चरण-शरण में बने रहे, सदा सद्‌बुद्धि, सच्चरित्र सत्संकल्प, तृप्ति रहे सन्तोष रहे, धैर्य रहे, सहनशीलता रहे आपकी कृपा बरसती रहे आपकी करुणा बरसती रहे।

हे प्रभो! आप हमें असत् से निकाल कर सत् की ओर ले चलो अन्धकार से निकाल कर प्रकाश को ओर ले चलो, मृत्यु से निकाल कर अमरत्व की ओर ले चलो।

जब सन्त सहारा बन जायें

–डॉ० अवध प्रकाश दूबे, कानपुर

वर्ष 1947, घनी बरसात, प्रातः 4 बजे का समय, स्थान कामदगिरि (चित्रकूट, भारत) की परिक्रमा। एक महिला परिक्रमा कर रही है। उद्देश्य–पुत्र प्राप्ति की कामना (8 बच्चों की मृत्यु पहले हो चुकी थी) ठोकर लगने पर गिर पड़ी। परिक्रमा कर रहे युवा सन्त ने उन्हें उठाकर सहारा दिया और पूछा चोट तो नहीं लगी माँ।

महिला रो पड़ी और कहा मेरे तो कोई पुत्र नहीं है। सन्त ने ढांढस बँधाया और हुआ एक नये प्रभात का आगमन, एक नया मार्ग प्रशस्त हुआ। सन्त ने महिला को आशीर्वाद दिया उन्हें पुत्र प्राप्त हो और दीर्घायु हो। पर महिला ने कहा तब तक मैं क्या करूँ? सन्त ने कहा, तब तक मुझे ही पुत्र मान लो॥

तब एक नया सम्बन्ध बना–आध्यात्मिक, अटूट, सुदृढ़ और अनूठा। माँ की ममता को स्वीकारते हुए सन्त ने माँ का दिया नाम अवधेश ग्रहण कर लिया। कालान्तर में महिला ने बालक को जन्म दिया और महाराज जी के आशीर्वाद से वह बड़ा होता गया और डाक्टर बन गया।

समय बीतता गया और फिर एक बार महाराज जी ने बुलाकर कहा कि शरीर का अनिष्ट है आ जाओ तो शान्ति हवन करा देंगे। हवन सम्पन्न होने के दो दिन बाद कार का बहुत भीषण एक्सीडेंट हुआ पर जीवन सुरक्षित रहा। अब उस बालक के दो सुयोग्य पुत्र हैं और दो पोते। भरा–पूरा परिवार आज भी महाराज जी की कृपा से फल–फूल रहा है और संसार की सेवा में लगा है और आध्यात्मिक शैली का जीवन व्यतीत कर रहा है।

वह सन्त थे परम पूज्य पंजाबी भगवान जी और उस बालक का नाम है डॉ० अवध प्रकाश दुबे।

परम पूज्य महाराज जी की आध्यात्मिक शक्ति के ऐसे अनगिनत उदाहरण

हजारों परिवारों में है। वास्तव में परम पूज्य पंजाबी भगवान जी का अवतरण मानव जाति के कल्याण और दिशा निर्देशन हेतु ही हुआ था।

ऐसे युग मनीषी शरीर तो धारण करते हैं हमारी रक्षा एवं विकास करने हेतु पर शरीर छोड़ने के उपरान्त भी हमारी दिशा और दशा दोनों को सुव्यवस्थित रखते हैं।

परम पूज्य पंजाबी भगवान जी भी कहीं गये नहीं हैं यहीं हैं हमारे बीच। अब हम सबका कर्तव्य है कि उनके बताये मार्ग पर चलें और अपना, अपने परिवार का और समस्त विश्व का कल्याण करें तथा सम्पूर्ण मानव जाति की सेवा करते रहें और प्रभु का स्मरण निरन्तर करते रहें।

मेरे गुरुदेव

–विजय कुमार गुप्ता, वाराणसी

परम पूज्य गुरुदेव श्री श्री 1008 श्री पंजाबी भगवान श्री महाराज (श्री महाराज श्री) के बारे में कुछ भी कहना अथवा लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। श्री महाराज जी ने अपनी तपस्या से श्रीराम प्रभु, माता जानकी एवं पवन पुत्र श्री हनुमान जी से साक्षात्कार किया है तथा उन्हीं की कृपा एवं प्रेरणा से जीवों में कल्याण एवं प्रभु स्मरण में पूरा जीवन व्यतीत किया। श्री महाराज जी की कृपा सहज ही सभी को प्राप्त हो जाती थी।

मुझे श्री महाराज श्री के दर्शन का सौभाग्य समय-समय पर 1980 से होता रहा था चूँकि उस समय श्री महाराज जी चित्रकूट में ही रहते थे एवं बनारस में कोई स्थायी स्थान नहीं था इसलिये श्री महाराज जी का सान्निध्य कृपा मुझे प्राप्त नहीं हुई थी। वर्ष 1998 से श्री महाराज जी ने बनारस आश्रम श्री राम जानकी मठ में स्थायी रूप से साधना शुरू किया इसके बाद 2-3 दिन के अन्तराल पर श्री महाराज जी के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता था परन्तु कुछ ही दिनों से श्री गुरुदेव के सरल स्वभाव, सौम्य विचार, भगवत् स्मरण एवं अपनत्व की भावना ने मुझे प्रतिदिन उनके दर्शन लाभ प्राप्त करने के लिये प्रेरित किया। जिस कारण मैं अपनी दैनिक दिनचर्या पूर्ण कर प्रतिदिन शाम को दर्शन लाभ हेतु जाने लगा जिससे मुझे काफी आत्मसन्तुष्टि का अनुभव होता था। यदि किसी कारण वश किसी दिन श्री गुरुदेव के दर्शन लाभ हेतु जाना संभव नहीं हो पाता था उस दिन श्री गुरुदेव न आने का कारण पता करते थे साथ ही मुझे भी अपनी दिनचर्या में खालीपन का एहसास होता था। जो काफी कष्टकारी होता था।

हम महाराज श्री की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से किसी भी बड़े कार्य को सहजता से पूर्ण कर पाते थे जिसकी कल्पना करना भी संभव नहीं है।

परम पूज्य गुरुदेव की सहज सरलता प्रत्येक आगन्तुक संत एवं भक्त को सदैव यही एहसास कराती थी कि श्री महाराज जी की उनके प्रति विशेष कृपा है।

आज जब श्री महाराज जी साकेतधाम गमन कर प्रभु की नित्य लीला में सम्मलित हो चुके हैं हम सभी समान रूप से सूनापन महसूस कर रहे हैं परन्तु पूर्ण विश्वास के साथ आभास होता है कि श्री महाराज जी आज भी हम सभी के साथ हैं तथा हमेशा सत्कार्यों पर चलकर आगे बढते रहने के लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं। हमारी कामना है हम सभी को उनके द्वारा दिये गये निर्देशों का पालन करते हुये, चलने वाले सभी प्रभु सेवा एवं संत सेवा कार्यों को सुचारु रूप से चलाने की शक्ति एवं प्रेरणा प्रदान करें। यही हम सभी के लिये श्री महाराज जी का सबसे बड़ा आशीर्वाद होगा।

हम अपने जीवन को सार्थक समझते हैं कि हमें नारायण स्वरूप परम पूज्य महाराज श्री सद्गुरु के रूप में मिले तथा नित्य उनके सान्निध्य में कृपा प्रसाद स्वरूप आशिर्वाद प्राप्त हुआ।

आज हमारे पास परम पूज्य गुरुदेव की सबसे बड़ी धरोहर उनके द्वारा दिया गया दीक्षा-मंत्र है जिसके माध्यम से जीवन रूपी सिन्धु को पार करना सहजता से संभव हो सकेगा।

आचार खण्ड

धर्म और सदाचार

आचारो व्यवहारश्च विश्वसंस्थिति कारणम्।
उभौ तौ तनुतां भद्रं लोकस्य परमोज्ज्वलम्।।

आचार और व्यवहार विश्व की संस्थिति के मूल है। ये दोनों जनसामान्य के परमोज्जवल श्रेयस् का विस्तारं करें।

मनुस्मृति में धर्म के चार लक्षण बताये गये हैं–श्रुति, स्मृति, सदाचार और स्वात्मा का आनुकूल्य–

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतत् चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्।।

इन चारों में एक विशेष दृष्टि से सदाचार का सर्वोत्कृष्ट स्थान है क्योंकि श्रुति और स्मृति के द्वारा धर्म के निर्णय में समन्वय-कुशल और अध्ययन-अध्यापन से परिपुष्ट तथा समृद्ध की हुई प्रज्ञा की अपेक्षा होती है। स्वात्मा का आनुकूल्य संस्कारों तथा वास्तविक धर्म के निर्णय में कदाचित् प्रतिकूल भी हो सकता है; किन्तु सदाचार जो परम्परा से अपने देश और समाज में प्रचलित है उससे धर्म का स्वरूपज्ञान सर्वसाधारण को सरलता से हो सकता है। इसी दृष्टि से 'आचारः प्रथमो धर्मः' कहकर शास्त्रों में इनकी महत्ता का स्थापन किया गया है।

महाभारत के शान्ति पर्व में भीष्म ने धर्मलक्षण बताते हुए कहा है–

धारणाद् धर्ममित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः।
यत्स्याद् धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः।।

धर्म सम्पूर्ण प्रजा को धारण करता है। इसलिए धर्म वही है जिसमें धारण शक्ति हो। इस प्रकार मनुष्य के व्यापक परिवेश में धर्म शब्द का प्रयोग हुआ है। यहाँ तक कि अर्थ और काम के उपार्जन में भी धर्म की अनिवार्यता बताई गई है–

ऊर्ध्वबाहुर्विरोम्येषः न च कश्चिच्छृणोति माम्।
धर्मादर्थश्च कामश्च स धर्मः क्विं न सेव्यते।।

महाभारत को हिन्दू धर्म का विश्वकोष कहा जाता है। उसमें धर्म जीवन-दर्शन है जो मानव के सम्पूर्ण जीवन को धर्म के अन्तर्गत ही ग्रहण करता है। उसी धर्म को सनातन धर्म कहते हैं जो जीवन के शाश्वत मूल्यों का संवरण करता है। इसलिए धर्म का प्रयोजन केवल पारलौकिक सुख ही नहीं है–आचार-व्यवहार तथा कर्त्तव्य-नियम आदि भी हैं। मीमांसक ने धर्म को **'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'** अर्थात् धर्म के मूल में प्रेरणा है जो महापुरुषों के वेद विहित आचरण से प्राप्त होती है। इस परिभाषा के अनुसार नित्य, नैमित्तिक, काम्य, निषिद्ध और प्रायश्चित् कर्मों का विधान धर्म के अन्तर्गत है। धर्म की यह परिभाषा कुछ नियमों से परिसीमित है, क्योंकि मनुष्य स्वभाव से एक प्रकार का जन्तु ही है–इसलिए उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का नियमन करने के लिए मीमांसक ने प्रेरणा को धर्म का मूल माना है नहीं तो मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं रह जायेगा–

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

अर्थात् भोजन, निद्रा, भय और मैथुन तो मनुष्यों और पशुओं में समान है। दोनों वर्गो का भेदक-तत्त्व धर्म ही है। इसलिए जो मनुष्य धर्म का आचरण नहीं करते, वे पशु के समान हैं। इसलिए धर्म शब्द का प्रयोग इतने व्यापक अर्थों में हुआ है कि उसके अन्तर्गत व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन का प्रत्येक क्षेत्र आ जाता है। यही कारण है कि धर्म-सामग्री वेदों से लेकर उपनिषदों, पुराणों, स्मृतियों तथा रामायण, महाभारत आदि में मिलती है। धर्म के अन्तर्गत वर्ण और आश्रम तथा उनके कर्त्तव्य, अधिकार, संस्कार, नित्य नैमित्तिक और काम्य कर्म तथा राज-शास्त्र, समाज-शास्त्र आचार-व्यवहार सभी कुछ आ जाते हैं। वैदिक साहित्य में धर्म शब्द का प्रयोग इन सभी अर्थों में हुआ है। स्मृतियों में भी धर्म शब्द का कई अर्थों में प्रयोग हुआ है।

वैशेषिक सूत्र में धर्म की व्याख्या इस प्रकार की गयी है–

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

अर्थात् धर्म वह साधन है, जिससे आनन्द और मोक्ष प्राप्त हो। मनुस्मृति कहती है:–

वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य भी कहते हैं–

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वरूपं च प्रियमात्मनः।
सम्यक् संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्॥

सूत्र ग्रन्थों विशेषकर धर्म सूत्रों में धर्म के अंगों का विस्तार से विवेचन हुआ है। रामायण, महाभारत और पुराणों में भी व्यवहार धर्म की चर्चा हुई है। इस प्रकार धर्मशास्त्र का वाङ्मय बड़ा ही विस्तृत और विशुद्ध है। उनमें धर्म के उन शाश्वत मूल्यों का भी विवेचन हुआ है जो प्रत्येक देश और काल में लागू होते हैं।

इसी प्रकार स्मृतियों के नियम भी युगानुसार बनाए गये हैं–

कृते तु मानवाः प्रोक्ता त्रेतायां याज्ञवल्क्यजाः।
द्वापरे शंख लिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः॥

अर्थात् मनुस्मृति के नियम सत्ययुग के लिए, याज्ञवल्क्य त्रेता के लिए शंख लिखित द्वापर के लिए तथा पाराशर कलियुग के लिए है।

भोजन

धर्मशास्त्रों में भोजन के नियमों और प्रतिबन्धों का भी बड़ा विस्तृत विवेचन है, जिसमें भोजन की पूरी व्यवस्था आ जाती है। अर्थात् कितनी बार भोजन करना चाहिए, कौन पदार्थ भोज्य तथा पेय है, भोजन किस प्रकार दूषित होता है तथा किसका भोजन विधेय है इत्यादि। आहार–शुद्धि मानवजीवन का मूल है। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है–'आहारशुद्धौ सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलभ्ये सर्व ग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।' अर्थात् भोजन शुद्धि से ही चित्त की शुद्धि होती है और चित्त की शुद्धि से प्रजा की प्राप्ति होती है और प्रजा से ही सारे बन्धनों का क्षय होता है। सामान्य रूप से भोजन का विधान केवल दो बार का है और बैठकर करने का है। यथासाध्य भोजन एकान्त में, दूसरों की दृष्टि से दूर ही करना चाहिए। यथासाध्य मौन रहकर ही भोजन करना चाहिए। भोजन के पूर्व और पश्चात् आचमन का विधान है। भोजन के सामने आते ही हाथ जोड़ कर प्रणाम करना चाहिए। भोजन पात्र के चारों ओर जल छिड़कने का भी विधान है। खाते समय चमड़े का स्पर्श वर्जित है।

निषिद्ध भोजन कई प्रकार का होता है। (1) जाति दुष्ट या स्वभाव-दुष्ट-जैसे लहसुन, प्याज आदि, (2) क्रियादुष्ट-दुष्ट या निकृष्ट प्राणी से देखा हुआ या परोसा हुआ, (3) कालदुष्ट-समय बीत जाने पर या अनुचित या अनुपयुक्त समय का भोजन-जैसे वासी भोजन, ग्रहण में पकाया हुआ भोजन आदि, (4) संसर्ग दुष्ट-निकृष्ट संसर्ग या स्पर्श से भ्रष्ट, जैसे कुत्ता, बिल्ली, कीट आदि के संसर्ग से दुष्ट भोजन और (5) रसदुष्ट-जिसका स्वाद समाप्त हो जाता है। इसी प्रकार पतित-व्यभिचारी आदि का भोजन परिग्रह-दुष्ट होता है तथा जो भोजन बिना भाव के परोसा जाता है, वह 'भाव-दुष्ट' होता है। सूतक-पातक वाले घर के भोजन को 'निमित दुष्ट' कहते हैं।

दान

गृहस्थ के लिए दान का भी बड़ा महत्त्व है। शास्त्रों में दान की बड़ी महिमा है–

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुः दानमेकं कलौ युगे।।
यतीनां तु शमो धर्मस्त्वनाहारो वनौकसाम्।
दानमेव गृहस्थानां सुश्रूषा ब्रह्मचारिणाम्।।

दान का भारतीय शास्त्रों में बड़ा विस्तृत विवेचन है। प्रायः सभी पुराणों में दान की प्रशंसा की गयी है। विशेषकर अग्नि, मत्स्य और वाराह पुराण में दान की विशेष चर्चा है। महाभारत के अनुशासन पर्व में दान के विभिन्न रूप बताए गये हैं। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्यस्मृति में दान और परिग्रह की व्याख्या की गयी है। देवल ने दान के छः अंग बताये हैं। दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा, देय, काल और देश। देवल ने शास्त्रोक्तदान की परिभाषा इस प्रकार की है–

पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनवेक्ष्य प्रयोजनम्।
केवलं धर्मबुद्ध्या यद् धर्मदानं तदुच्यते।।

दान के अनेक प्रकार है-जैसे नित्य, नैमित्तिक, और काम्य, तथा सात्त्विक, राजस् और तामस्। धर्मशास्त्रों में भूदान का भी बड़ा महत्त्व है और भूमिदान को सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है। भूमिदान सम्बन्धी अनेक दानपत्र आज भी उपलब्ध हैं। कुछ वस्तुओं का दान महादान कहा गया है, जिसका अलग से विधान है। गोदान की भी बड़ी महिमा है। अनुशासन पर्व में भी गोदान का प्रसंग उठाया गया

है। दान के ही अन्तर्गत पुस्तकदान तथा धर्मशाला, आरोग्यशाला, पाठशाला आदि का निर्माण आता है।

गोदान और वर्तमान में उसका प्रचलित स्वरूप

शास्त्रों में गोदान की बड़ी महिमा बताई गयी है और यह महिमा गौ की उपयोगिता के आधार पर प्रतिष्ठित है। गौ से दूध, दही, घृत, गोमूत्र और गोबर की प्राप्ति होती है जो विभिन्न धार्मिक क्रियाओं में अनिवार्य रूप से उपादेय होती है। इन्हीं पाँचों चीजों से पंचगव्य बनता है और इससे मनुष्य देह और मन की शुद्धि के बाद ही उसे धर्मानुष्ठान में अधिकार मिलता है। मूत्र, गोबर और मृत्यु के बाद उसका सारा शरीर, खाल के रूप में कृषि के लिए ग्राह्य होता है। इन्हीं कारणों से गोदान को शास्त्रों में सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है। पूर्वकाल में गोदान प्रत्यक्ष गौ के दान के रूप में ही हुआ करता था, किन्तु कालान्तर में वह गौ के प्रतीकगामी रूप में परिवर्तित होने लगा और यह परिवर्तन जब प्रारम्भ हुआ, तब धेनु दान के नाम से इस दान का व्यवहार प्रचलित हुआ। मत्स्यपुराण और लिंगपुराण में गोदान के प्रसंग में कामधेनु दान की चर्चा आती है।

धर्मशास्त्रों में गोदान से बढ़कर दूसरा दान नहीं है। मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने ही गोदान की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

अनुशासन पर्व में लिखा है–

गोभिस्तुल्यं न पश्यामि धनं किंचिदिहाच्युत।
कीर्तनं श्रवणं दानं दर्शनं चापि पार्थिव॥

अर्थात् गौ के तुल्य कोई धन नहीं है। कीर्तन, श्रवण, दान, दर्शन आदि से भी बढ़कर गौ है। गौ सब पापों का निवारणं करने वाली है और यज्ञ का मूलभूत साधन भी गौ ही है। इसलिए गौ की पूजा से लोक और परलोक दोनों की प्राप्ति सम्भव है। गौएँ स्वर्ग में भी पूजी जाती है।

गायों में कपिला गाय सबसे श्रेष्ठ बताई गयी है। एक कपिला गाय दस साधारण गायों के समान होती है।

मानव और आचार धर्म

भारतीय शास्त्रों में धर्म का प्रयोग बड़े व्यापक अर्थ में हुआ है। एक ओर धर्म का अर्थ निश्चित नियम, आचरण और व्यवस्था है, दूसरी ओर धर्म मनुष्य

की लौकिक और अलौकिक उपलब्धियों का साधन है। मनु और यांज्ञवल्क्य दोनों ने धर्म के अन्तर्गत उसके इन पक्षों को ले लिया है–

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् धर्मस्य लक्षणम्॥

धर्मशास्त्रों में धर्म के दूसरे पक्ष का भी विवेचन हुआ है जो सामान्य धर्म है तथा जिसका आचरण मानव मात्र के लिए उपयोगी है। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य दोनों ही स्मृतियों में सामान्य धर्म का विवेचन हुआ है–

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एतद् सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽव्रवीन्मनुः॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः
दानं दमो दया शान्तिः सर्वेषां धर्म साधनम्॥

सामान्य धर्म का पालन करने से भी अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति सम्भव है। सामान्य धर्म के अन्तर्गत आचार की ही प्रधानता है और आचार को ही परम धर्म माना गया है, 'आचारः परमोधर्मः' तथा 'चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः' इत्यादि वाक्य इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हैं। समाज चाहे जैसा हो, चाहे जो देश अथवा काल हो, सदाचार का सर्वदा महत्त्व रहेगा। मनु महाराज ने आचार पर बड़ा विस्तार से विचार किया है और मानसिक, वाचिक तथा कायिक तीनों प्रकार की शुद्धता को आचरण की शुद्धता कहा है, **'सत्यपूतां वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत्'** महाभारत में स्थान-स्थान पर सामान्य धर्म की चर्चा हुई है। शान्ति पर्व में भीष्म सत्य की प्रशंसा करते हुए कहते हैं–

अश्वमेधसहस्त्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।
अश्वमेधसहस्त्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते॥

इसी अनुशासन पर्व में अहिंसा के विषय में कहा गया है–

सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु चाप्लुतम्।
सर्वदानफलं चापि नैतत्तुल्यमहिंसया॥

अहिंस्त्रस्य तपोऽक्षय्यमहिंस्त्रो यजते सदा॥

विशेष धर्म का पालन सामान्य धर्म के पालन के बिना सम्भव ही नहीं है। पुराणों के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है–

अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।

आचरण-दर्शन का जितना अच्छा निर्देशन श्रीमद्भगवद्गीता में हुआ है, उतना किसी दूसरे ग्रन्थ में नहीं हुआ। महाभारत में तो आचार-दर्शन संपूर्ण ग्रन्थ में बिखरा हुआ है, परन्तु गीता में उसको व्यवस्थित रूप दे दिया गया है। दैवी सम्पद् और आसुरी सम्पद् के नाम से गीता में आचार की श्रेणियाँ बता दी गयी है। आचार के वे सिद्धान्त मनुष्यमात्र पर लागू है।

सदाचारी दुःखी और दुराचारी सुखी?

यह ज्ञातव्य है कि सुख-दुख का निर्णय तात्कालिक फल अथवा परिस्थिति से नहीं किया जा सकता। पुण्य, पाप तथा धर्म और अधर्म तत्काल फल देते हैं, ऐसी बात नहीं है। धर्मशास्त्रों की आधारशिला कर्म सिद्धान्त है। जिसके अनुसार कोई भी किया हुआ कर्म निष्फल अथवा व्यर्थ नहीं होता। यह मनुष्यलोक वास्तव में कर्मभूमि है। इसलिए स्मृतियों में कर्म को इतना महत्त्व दिया गया है। कर्मसिद्धान्त का मूल पुनर्जन्म का सिद्धान्त है। पूर्वजन्मकृत कर्म ही दैव कहलाता है तथा वर्तमान जन्म का किया हुआ कर्म पुरुषार्थ कहलाता है पूर्वजन्म का पुरुषार्थ इस जन्म में दैव बनता है और इस जन्म का पुरुषार्थ दूसरे जन्म में दैव बनता है। इस प्रकार दैव और पुरुषार्थ अन्योन्याश्रित है। महाभारत में कहा गया है कि **'पुरुषार्थेण विना दैवं न सिद्ध्यति।'** कर्म का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है, चाहे वह कभी भी भोगना पड़े-

अवश्यमेवभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि।।

यहाँ तक माना गया है कि यदि किसी व्यक्ति को भोग नहीं प्राप्त हुआ है तो उसके पुत्र, पौत्र, नाति आदि को उसका फल भोगना पड़ता है-

पापं कर्म कृतं किचिंद् यदि तस्मिन् न दृश्यते।
नृपते! तस्य पुत्रेषु पौत्रेष्वपि च नप्तृषु।।

वह बात तो प्रत्यक्ष देखने में आती है कि कोई व्यक्ति जन्म से दरिद्र होता है और कोई जन्मसे धनी। साथ ही वंश परम्परा से अनेक रोग दिखाई देते हैं। इन सबके मूल में कर्म का सिद्धान्त ही है। कर्म के प्रवाह को अनादि माना गया है। बुरा कर्म करते हुए भी जिन व्यक्तियों को इस जन्म में उसका फल नहीं मिल

रहा है, उसका कारण उनके संचित कर्म ही हो सकते हैं। संचित कर्म का ही नाम अदृष्ट है। संचित कर्मों के भोगने में एक क्रम रहता है। उस क्रम के अनुसार प्रारब्ध बनता है तथा उनके भोग के समय क्रियमाण कर्म अधिक फल नहीं रखते। पापियों तथा दुष्टों को जो सुख और धन प्राप्त होता है, वह उनके संचित कर्मों का फल है। इसीलिए मनुस्मृति में लिखा है–

अधार्मिको नरो यो हि यस्य चाप्यनृतं धनम्।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते।।

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्तमानस्तु कर्तुर्मूलानि कृन्तति।।

अर्थात् जो मनुष्य अधार्मिक है, जिसमें अनाचार से धन एकत्र किया है अथवा जो प्रतिदिन हिंसा करता है, वह सुखी नहीं हो सकता। धर्माचरण से यदि कष्ट भी हो तो भी अधर्म नहीं करना चाहिए। अधार्मिकों और पापियों की सुख-समृद्धि क्षणिक होती है। अधर्म का आचरण गौ की भाँति तुरन्त फलीभूत नहीं होता, परन्तु धीरे-धीरे वह आचरण पापी की जड़ को काट देता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को धर्म का आचरण करना चाहिए।

सभी के लिए पालनीय आचार

आचार-शास्त्र एक समुद्र है, परन्तु समुद्र-मन्थन से जिस प्रकार कतिपय रत्नों की प्राप्ति होती है इसी प्रकार आचार-शास्त्र में भी कुछ नियम हैं जिन्हें आचार-रत्न कह सकते हैं।

हम तो योगी हैं, पातंजल योग-दर्शन ही हमारा प्रमुख आचार ग्रंथ है। हमारी दृष्टि में सब प्रकार की साधनाओं के मूल में पातंजल योग दर्शन ही प्रतीत होता है।

योग के अष्टांग साधनों में यम और नियम ऐसे साधन हैं जो आचार के अन्तर्गत आते हैं। उनका पालन अवस्था, सामर्थ्य और परिस्थिति के अनुसार मानवमात्र के लिए विधेय है। अष्टांग योग के यमों और नियमों में धर्मशास्त्रो के सभी आचारों का सार आ गया है। बौद्ध, जैन और ईसाई धर्मों में भी इन आचारों की मान्यता है। योगी इन आचारों की ही पूर्ण निष्ठा से कैवल्य पद प्राप्त करता है, ज्ञानी को स्वरूपावस्थिति होती है और भक्त को भगवत्प्रेम की प्राप्ति। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं तथा शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पाँच नियम हैं। सारा आचार-व्यवहार इन्हीं

में आ जाता है। एक-एक यम और नियम को लेकर बहुत विचार हुआ है। असल बात तो यह है कि सारे यमों और नियमों का मूल अहिंसा ही है। साधारण व्यवहार में अहिंसा का यही स्वरूप हो सकता है कि हम कमसे-कम दूसरों के प्रति वैसा आचरण न करें, जो हमारे अपने लिए सुखकर न हो। महाभारत में अहिंसा के इस रूप की विस्तृत व्याख्या की गयी है। अहिंसा का दृढ़ व्यावहारिक रूप सत्य है। कर्तव्य भावना की दृढ़ता सत्य के विना सम्भव ही नहीं है। कर्तव्य-पालन के कारण ही हरिश्चन्द्र रको सत्य हरिश्चन्द्र कहा जाता है। कठोर वचन या हृदयविदारक वाक्य सत्यनिष्ठा में नहीं आते, क्योंकि सत्य भाषण में जनकल्याण निहित रहता है। इसलिए मनु महाराज ने कहा है–**'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।'** योगियों के लिए तो आत्मज्ञान ही सत्य का स्वरूप है। महाभारत में सत्य के व्यावहारिक पक्ष पर बड़ा विस्तार से विवेचन हुआ है। सत्य को हजार अश्वमेध यज्ञों से बढ़कर बताया गया है, परन्तु सत्यासत्य विवेक बड़ा कठिन है। इसलिए योगेश्वर भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को सत्यासत्य विवेक का उपदेश दिया है। अहिंसा की रक्षा के लिए असत्य को भी विधेय बताया गया है, क्योंकि अहिंसा सत्य से बढ़कर है। आजकल जैसी परिस्थितियाँ हैं, उनमें सत्य का पालन बड़ा कठिन है। इसलिए भगवान् कृष्ण ने सत्यासत्य का विवेचन करते हुए कहा है–

भवेत्सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत्।
यत्रानृतं भवेत् सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत्।
सर्वस्यापहारे तु वक्तव्यमनृतं भवेत्।
तत्रानृतं भवेत्सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत्॥

तादृशे पश्यते बालो यस्य सत्यमनुष्ठितम्,
भवेत्सत्यमवक्तव्यं न वक्तव्यमनुष्ठितम्।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित्॥

यह सत्य की व्यावहारिक व्याख्या है। व्यावहारिक सत्य, सत्य के तत्त्व से भी कठिन है, क्योंकि व्यवहार में कभी-कभी झूठ सत्य हो जाता है और सत्य झूठ हो जाता है इसी प्रकार सत्य बोलने से कभी-कभी सर्वस्व हरण भी हो सकता है। ऐसे स्थलों पर झूठ सत्य और सत्य झूठ हो जाता है। कहीं-कहीं सत्य बात कहने पर बड़ा अनर्थ हो सकता है, इसलिए झूठ और सत्य के तत्त्व को जानना बड़ा कठिन है। धर्म का प्रयोजन किसी को कष्ट पहुँचाना नहीं है। इसलिए

कहीं-कहीं चुप रहने में ही धर्म होता है। यदि कहीं बोलना आवश्यक ही है, तो वहाँ झूठ को झूठ नहीं माना जाता है-जैसे प्राणों पर संकट आने पर, विवाह काल में, हँसी-मजाक में तथा कुलनाश की सम्भावना पर। इसी प्रकार चोरों और डकैतों से पाला पड़ने पर भी झूठ बोलना विधेय है-

अधर्मं नात्र पश्यन्ति धर्मतत्त्वार्थदर्शिनः,
यत्स्तेनः सह सम्बन्धान्मुच्यते शपथैरपि।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत्सत्यमविचारितम्,
न च तेभ्यो धनं देयं शक्ये सति कथंचन॥

यदि दुष्ट, डाकू या चोर कोई प्रश्न करे तो उसका उत्तर नहीं देना चाहिए, क्योंकि उत्तर देने में हानि की सम्भावना है। यदि बोलने की मजबूरी ही हो तो पागल की तरह व्यवहार करना चाहिए-यह मनु महाराज का आदेश है। सत्य बोलना अच्छा है, परन्तु सत्य से भी अच्छा है प्राणियों का कल्याण और अहिंसा।

जिस प्रकार अहिंसा का व्यावहारिक साधन सत्य है, उसी प्रकार सत्य का व्यावहारिक साधन अस्तेय है। सत्य की भाँति अस्तेय का व्यावहारिक ज्ञान भी बड़ा कठिन है। इस युग में जिस प्रकार सत्य का आचरण कठिन है, उसी प्रकार अस्तेय का भी। किसी प्रकार से किसी के धन, द्रव्य अथवा अधिकार का अपहरण स्तेय कहलाता है। स्तेय आज समाज-धर्म हो गया है, इसलिए समाज में घोर अशान्ति तथा दुर्व्यवस्था है। सत्य के पालन की भाँति अस्तेय का पालन भी एक सामाजिक समस्या है।

जितेन्द्रिय रहना ही ब्रह्मचर्य है। हमारे धर्मशास्त्रों में ब्रह्मचर्य का बड़ा महत्त्व है। ब्रह्मचर्य पालन से शुक्र की रक्षा होती है। जो हम प्रतिदिन भोजन करते हैं, उससे रक्त बनता है। रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य। योगी कठिन तपस्या के द्वारा ऊर्ध्वरेता हो जाते हैं। ऊर्ध्वरेता का अभिप्राय यह है कि शुक्र वायु रूप में बदल कर ऊर्ध्वगति हो जाता है। गीता में अपरिग्रह का बड़ा सुन्दर स्वरूप वर्णन किया गया है-

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः,
तैर्दत्तानप्रदायेभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्व किल्विषैः,

भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्।। (गीता. 3। 12, 13)

निष्काम कर्म ही गीता का यज्ञ है और प्राणियों की सेवा ही देवोपासना है। इन दोनों भावों से जो भोग-सामग्री का संचय है, वह परिग्रह के अन्तर्गत नही है। यदि अपरिग्रह के नियम का पालन किया जाये तो निश्चित रूप से समाज के अनेक रोगों का शमन हो सकता है।

नियमों के पालन से ही यमों का भी पालन हो सकता है जैसा कि मनुजी ने भी लिखा है–

यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः।
यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन्।।

साधारण साधक के लिए यम और नियम आचार के अन्तर्गत आते हैं परंतु योगी के लिए यम और नियम निष्ठा के रूप में है। गीता के स्थितप्रज्ञ की निर्वैरता अहिंसा से ही सिद्ध हो सकती है। योगसूत्र में जो 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः' लिखा है, वह अक्षरशः सत्य है। निरन्तर अभ्यास करने से योगी के अन्तःकरण से अहिंसा की सात्त्विक धारा निकलने लगती है जिसके प्रभाव से हिंसक प्राणी भी अपनी हिंसक-प्रवृत्ति छोड़ देते हैं। हमारे निकट सारे प्राणी समान है। कभी-कभी हम वृक्षों, लताओं और पर्वतों को भी उपदेश करते हैं। इसी का नाम अहिंसा का प्रतिष्ठा है।

दया और अहिंसा

दया आज के युग की माँग है। दुःखाग्नि से तप्त जीवों को दया की अमृत-वृष्टि की आवश्यकत्ता है। दया अहिंसा का ही व्यावहारिक रूप है। अहिंसा में प्रतिष्ठित योगी ही दया करने में समर्थ है। योगी की अहिंसात्मक वृत्ति का पहला रूप दया ही है। योगी की दया का फल दया के पात्र की सामर्थ्य के अनुसार ही होता है जैसे सूर्य की किरणों के प्रकाश को विभिन्न विषय अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार ग्रहण करते हैं-इसी प्रकार योगी की दया का फल भी सबके लिए समान नहीं होता। अहिंसा में तो हिंसा के भाव का निराकरण है परन्तु दया में किसी के दुःख के निवारण का भाव है। अहिंसा निषेधात्मक है तथा दया प्रवृत्यात्म का जहाँ दया-भाव नहीं है, वहाँ अहिंसा हो ही नहीं सकती। इसलिए अहिंसा में दया का स्वतः ही समावेश हो जाता है।

साधारण मनुष्यों की दया में कुछ कृपाभाव होता है, प्रयत्न भी होता है और दया के पात्र का कष्ट निवारण करने के लिए कुछ उपचार भी होता है, परन्तु योगी की दया का प्रवाह गंगा के समान अजस्र, अबाध, तथा स्वतःप्रवाही है। उसमें कोई भेद-भाव नहीं है। जिस प्रकार गंगा में दुष्ट, पापी और पुण्यात्मा सभी स्नान करते हैं, उसी प्रकार सन्त की दया के सभी पात्र है—फल, श्रद्धा और विश्वास पर निर्भर करता है। सन्तों की दया में भगवत्कृपा का भाव है जो जीवमात्र के लिए समान है। अहिंसा भाव में जीवदया स्वाभाविक ही है और असल बात तो यह है कि आत्मा में प्रतिष्ठित योगी की जीव-दया अपने ऊपर ही दया है। दया में जब आर्द्रता आ जाती है, तब उसे करुणा कहने लगते हैं। करुणा के भाव में योगी का हृदय दयार्द्र हो जाता है। करुणा में दुःखनिवारण की भावना और तीव्र हो जाती है। योगी कभी-कभी अपने ऊपर भी दया करते हैं वह उनकी आत्मदया कहलाती है। किसी प्राणी के दुःख को देखकर जब योगी करुणार्द्र होता है तो संयम में कुछ शिथिलता आ जाती है। उस समय योगी अपने ऊपर दया करता है और अपने को सँभाल कर अव्यय पद में स्थित होता है—

निर्मानमोहाः जितसंगदोषाः अध्यात्मनित्याः विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैः गच्छन्त्यमूढ़ाःपदमव्ययं तत्॥

योगी की आत्मदया आध्यात्मिक दया होती है और परदया लौकिक होती है। लौकिक दया में योगी की स्वभाव वृत्ति नहीं होती है, क्योंकि वह तो वीतराग है। वह दया करके जीव के दुःख के कारण का निवारण करना चाहता है। साधनावस्था में तो दया आदि का भाव चित्त की शुद्धि का उपाय है।

भजन में मन लगाने के उपाय

भजन में मन लगाने के लिए भक्ति की उपयोगिता का ज्ञान आवश्यक है, क्योंकि मनुष्य का मन उन्हीं कार्यों में लगता है, जिन्हें वह अपने लिए उपयोगी समझता है। यह तो सुपरीक्षित वास्तविकता है। प्रारम्भिक अवस्था में भजन करने का समय और स्थान निश्चित होना चाहिए। भगवच्चिन्तन भजन का स्वरूप है। भगवत्चिन्तन में यदि मन न लगे और मनोराज्य चलता रहे तो चिन्ता नहीं करनी चाहिए। एक उपाय तो यह है कि मन से जिस वस्तु का बार-बार चिन्तन हो, उसी को ध्येय बना लेना चाहिए तथा राम नाम अथवा गुरुमन्त्र से उसी का ध्यान करता जाये। कुछ दिनों के अभ्यास से वृत्ति तद्विषयाकार हो जायेगी। उस समय

या तो वह विषय ही भगवत् स्वरूप हो जायेगा अथवा उस विषय से मन छूट जायेगा। दूसरा उपाय यह है कि जब मनोराज्य होने लगे तो मन्त्र जप अथवा कीर्तन उच्च स्वर से करना प्रारम्भ कर देना चाहिए। वाणी का स्वरूप सबसे सूक्ष्म है और जब उच्च स्वर से मन्त्र जप तथा कीर्तन होता है तो वाणी प्राण और मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। धीरे-धीरे मनोराज्य समाप्त हो जाता है।

भारतीय संस्कृति के प्रतीक–गंगा, गायत्री और गौ

वेदविद्या भारतीय संस्कृति का पहला प्रतीक है। वेदविद्या त्रयीविद्या कहलाती है। ऋक्, यजुः और साम ही त्रयीविद्या है। चतुर्थ वेद अथर्व तो त्रयी का ही उपलक्षण है। त्रयी विद्या का सम्बन्ध अग्नित्रय से है। अग्नि, वायु और आदित्य ये तीन तत्त्व ही विश्व में व्याप्त है। पुरुष ब्रह्म के तीन पैर ऊपर है। और एक पैर विश्व है। त्रयीविद्या के समान ज्ञान, कर्म और उपासना का त्रिक् वेद विद्या का दूसरा स्वरूप है, जिसके माध्यम से वेद ब्रह्म की सत्, चित् और आनन्द इन तीन विभूतियों की अभिव्यक्ति हो रही है। विश्व के सम्पूर्ण धर्मों के केन्द्र विन्दु इस त्रिक् में ही स्थित हैं यह त्रिक् ही और अधिक विशिष्ट रूप में गायत्री, गंगा और गौ के रूप में प्रस्फुटित हुआ है। इसलिए गायत्री, गंगा और गौ के तत्त्व को ठीक-ठीक समझना ही भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों को समझना है।

गौ, गंगा और गायत्री को अबतक भारतीय संस्कृति के प्रतीक के रूप में स्वीकार किया गया है। वास्तव में भारत की सम्पूर्ण प्रजा भी उन्हें संस्कृति के रूप में मान्यता नहीं देती। गौ को सामान्य पशु और गंगा को सामान्य नदी तथा गाायत्री को एक सम्प्रदाय का मंत्र मात्र मानने की धारणा रखने वालों की संख्या भारत में भी पर्याप्त है। ऐसी स्थिति में इन्हें सारे विश्व में संस्कृति का प्रतीक माना जाना कैसे सम्भव हो सकता है और यदि ऐसी कोई सम्भाव्यता हो सकती है तो वह बड़ी रहस्यपूर्ण होगी, जिसे सामान्य मानव को समझ पाना असम्भव सा प्रतीत होता है। अतः भारतीय संस्कृति को सार्वजनीनता का रूप देना एक निष्फल चेष्टा है।

यह विषय रहस्य अवश्य है पर एक तथ्य है और इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। जब तक किसी रहस्य को जान न लिया जाये, तब तक उसमें आस्था नहीं होती। आज विज्ञान प्रकृति के अनेक पदार्थो के रहस्य का उद्घाटन कर रहा है, इसीलिए हमारी इसमें आस्था बढ़ती जा रही है। यदि विज्ञान का स्वरूप विशुद्ध विध्वंसक ही हो तो उससे हमारी आस्था ही नहीं हटेगी, बल्कि उसके लिए घृणा भी बढ़ेगी। स्वरूपज्ञान से ही किसी वस्तु के प्रति आस्था-अनास्था

होती है। गायत्री, गंगा और गौ के वास्तविक स्वरूप को भी लोग भूल गये हैं। पाश्चात्य सभ्यता के आवरण में यथार्थ ज्ञानशक्ति और क्षीण हो गयी। जब तक समाज में इन प्रतीकों के स्वरूप की प्रतिष्ठा नहीं होती, इनका यथार्थ ज्ञान समाज को नहीं हो सकता और यथार्थ ज्ञान के बिना आस्था भी नहीं हो सकती। एक दूसरी बात यह भी है कि यह युग उपयोगितावाद का है-और उपयोगिता में प्रतीक्षा की भी गुंजाइश नहीं है, 'तुरंत दान महाकल्याण' का सिद्धान्त आज के समाज पर सोलहों आने लागू होता है। इसलिए आज के प्राणी की आस्था उन्हीं विषयों पर होती है, जिनकी अविलम्ब उपयोगिता हो। यही कारण है कि संस्कृति के उपादानों और धर्म के तत्वों से लोगों की आस्था उठती जा रही है। आज का साधारण मनुष्य यह भी नहीं सोचता कि जब भौतिक उपलब्धियों के प्रत्यक्षीकरण में ही दशाब्दियाँ लग जाती है और उनके लिए अपरिमित धन का अपव्यय करना पड़ता है तो आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए कितनी साधना और समय अपेक्षित होंगे। ऋषियों ने बड़ी तपस्या के पश्चात् संस्कृति और धर्म के प्रतीकों को नवनीत के समान साधारण समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया। कालचक्र ने उन प्रतीकों को समाज से अप्रतिष्ठित कर दिया। आज फिर उनकी पुनः प्रतिष्ठा की आवश्यकता है।

यह बहुविदित और बहुसम्मत तथ्य है कि गौ, गंगा और गायत्री ही भारतीय संस्कृति के मुख्य और मूल प्रतीक हैं। गौ और गंगा की महत्ता-उपयोगिता साधारणतया सभी को मान्य है। जो लोग उन्हें देवतारूप में स्वीकार नहीं करते, वे भी उनकी लौकिक उपयोगिता से इनकार नहीं कर सकते। रह गयी गायत्री की बात, उसके विषय में शास्त्रों के द्वारा जानकारी प्राप्त की जा सकती है। धर्मशास्त्रों में गायत्री के जप का विधान है। गायत्री विद्या वेद की प्राण है। पदार्थ में जो शक्ति है, उसे ही प्राण कहते हैं। इन दोनों के रहस्य को समझना ही गायत्री की उपासना है। तीन प्रकार से गायत्री की व्युत्पत्ति हो सकती है-'यद् गायते तद् गायत्री, गायन्तं त्रायते इति गायत्री, तथा गच्छतीति गायत्री।' तीनों ही व्युत्पत्तियाँ ठीक है।

गायत्री जप से शक्ति का संग्रहण किया जाता है। इससे मन, प्राण और वाक् की एकसूत्रता होती है। यह एकसूत्रता ही मानव ज़ीवन का रहस्य है। धीयाँ बुद्धि मन का ही संकल्पात्मक रूप है, उसकी सत् प्रेरणा के लिए ही गायत्री से प्रार्थना की जाती है। गायत्री मन्त्र का रहस्य बड़ा ही विचित्र है। इसमें ब्रह्म

के सत् स्वरूप की व्याख्या हुई है। ओंकार की तीन मात्राऐं त्रिगुणात्मक जगत् की अक्षर रूप में प्रतीक है और गायत्री की तीन व्याहृतियाँ, उस ब्रह्म की प्रपंचात्मक अभिव्यक्ति है।

वे देश, वे जनपद, वे आश्रम, वे पर्वत वास्तव में धन्य हैं, जो गंगा के तटवर्ती है। गंगाजल की प्रशंसा में यहाँ तक कह दिया है कि उसके सेवन से जन्म जन्मान्तर के पाप नष्ट हो जाते हैं और यदि संसार में गंगा न रहे तो जगत् का अस्तित्व ही व्यर्थ है–

वर्णाश्रमा यथा सर्वे स्वधर्मज्ञानवर्जिताः।
ऋतवश्च यथासोमास्तथा गंगां विना जगत्॥

गंगा के जल के लिए यहाँ तक कह दिया गया है कि जिस प्रकार देवताओं के लिए अमृत, पितरों के लिए स्वधा तथा नागों के लिए सुधा, उसी प्रकार मनुष्य के लिए गंगाजल है। गंगा तट के बालू का भी बड़ा महत्त्व है। उसके सेवन से अनेक रोगों की शान्ति होती है। महाभारत में जो गंगा का वर्णन है वह साधारण जन को अतिशयोक्तिपूर्ण अवश्य लगेगा परन्तु जो विद्वान् व्यासशैली से परिचित है, वे सहज ही उस स्तवन से अर्थवाद को हटाकर मूल सिद्धान्तों का हृदयंगम कर सकते हैं। महाभारत में गंगा के लिए जिन विशेषणों का प्रयोग हुआ है, उनका महत्त्व धार्मिक दृष्टि से तो हैं ही, साथ ही उपयोगिता और विज्ञान की दृष्टि से ही भी उनका महत्त्व है। गायत्री का विवेचन करते हुए उसके मूल तत्त्व की ओर संकेत किया जा चुका है। विश्व का सम्पूर्ण ज्ञान-विज्ञान तो गायत्री में समाविष्ट है ही, साथ ही गायत्री विश्व की सम्पूर्ण विद्या विभूति और सत्त्व की भी प्रतीक है। गंगा का त्रिपथगा विशेषण सकारण है, साथ ही महाभारत में गंगा को 'यशस्विनी वृहती विश्वरूपा', कहा गया है, जो सब प्रकार की ऋद्धिसिद्धि को देने वाली है। सहस्त्ररश्मि सूर्य का भी गंगा से सम्बन्ध बताया गया है। गम्भीरता से विचार किया जाये तो ज्ञात होगा कि सूर्य की किरणों को भी वेद में नदियों के नाम से अभिहित किया गया है। वेद में सूर्य को दस किरण वाला बताया है–'रश्मिभिर्दशभिः'। सूर्य की दस किरणों में एक किरण का नाम कपिल है, जिसका सम्बन्ध वाक् से हैं। शेष नौ किरणों का सम्बन्ध नौ नदियों से हैं वे नौ नदियाँ है-गंगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्रि, परुष्णी, असिक्नी, मरुद्वृधा, वितस्ता और आर्जिकीया। सूर्य की दस किरणों में सात

किरणें पृथ्वी पर व्यक्त होती है। वे सात किरणें ही सात नदियाँ है। सूर्य की किरणें त्रिवृत्त कही गयी है 'त्रिवृत्तं सप्ततन्तून्'। किरणों के तीन रूप हैं-अप, जल और अग्नि। अप आकाश तत्त्व है। आकाश में व्याप्त वायु तत्त्व है। इस वायु के द्वारा अप तत्त्व तेज रूप में परिवर्तित होता है और फिर वही तेज जलस्वरूप बन जाता है। इसीलिए गंगां को त्रिपथगा कहा है। गंगा के जितने भी विशेषण है सब सार्थक और वैज्ञानिक है। सूर्य की प्रमुख सातों किरणों का आविष्कार सात ऋषियों ने किया। महाभारत में गंगा को ऊर्जावती और मधुमती कहा गया है। साथ ही यह भी कहा गया है कि गंगा की ख्याति नक्षत्रलोक, द्युलोक और पृथिवीलोक में है–

ख्यातिर्यस्याः खं दिवं च नित्यं।
पुरा दिशा विदिशश्चावतस्थे।।

इसी प्रकार गंगा को घृतवाहा, विश्वतोया और रूक्मगर्भा कहा गया है। महाभारतकार गंगा की प्रशंसा में अनेक विशेषणों का प्रयोग करते हुए नहीं थकते। गंगा तीनों लोकों की माता है। जैसे–

गंगा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों में अनेक कथाएँ आती है। सभी कथाओं का प्रतीकात्मक महत्त्व है। ब्राह्मी, नारायणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, जाह्नवी, भागीरथी आदि विशेषणों के अन्तराल में सृष्टि की उत्पत्ति और विकास का रहस्य है। ये सब विशेषण गंगा के माध्यम से भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं।

विष्णु के सम्बन्ध से ही गंगा को विष्णुपदी कहा गया है। अमरकोश में गंगा के नाम हैं–

गंगाविष्णुपदी जह्नुतनया सुरनिम्नगा।
भागीरथी त्रिपथगा त्रिस्त्रोता भीष्मसूरपि।।

(अमर० 1। 31।।)

वेद विश्व का विज्ञान है, मानव शरीर ब्रह्माण्ड का लघुतम रूप है और संस्कृति वेद का आचार है। इसीलिए सप्त किरणों, सप्त नदियों और सप्त ऋषियों की सत्ता शरीर में ही बतायी गयी है। यजुर्वेद में लिखा है–

सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापःस्वपतो लोकमीयुस्तत्रजागृतौ अस्वप्नजौसत्रसदौ च देवौ।।

(यजु० 34। 55)

उपयोगिता की दृष्टि से गंगा का जो महत्त्व है, वह किसी से छिपा नहीं है। भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है और गंगा उसके लिए अमृतस्वरूपा है। जिन्होंने गंगा के सम्पूर्ण प्रवाह के तटवर्ती प्रदेशों को देखा है, वे ही उसके भौतिक और आध्यात्मिक महत्त्व का सही मूल्यांकन कर सकते हैं। गंगा के प्रवाह के समान ही भारतीय संस्कृति का प्रवाह अजस्र, अबाध और शाश्वत है।

संस्कृति की दृष्टि से गौ का महत्त्व

संस्कृति की दृष्टि से गौ का महत्त्व तो गायत्री और गंगा से भी बढ़कर है। गायत्री की साधना में कठिन तपस्या अपेक्षित है। गंगा सेवन के लिए भी कुछ त्याग करना ही पड़ता है। परन्तु गौ का लाभ तो घर बैठे ही मिल जाता है। दुःख की बात यह है कि आज गौ को साधारण पशु समझकर उसकी उपेक्षा की जाती है और भारतवर्ष में लोग उसका महत्त्व नहीं समझते। यदि वाक् गायत्री है, प्राण गंगा है, तो मन गौ है। मन की शुद्धि के बिना न तो कोई साधना हो सकती है और न ही भौतिक उपलब्धि का सुख प्राप्त हो सकता है। मनुष्य की सम्पूर्ण क्रियाओं का मूल मन है और गौ मन की शुद्धि का हेतु है। मानव जीवन से पशु जगत् का यों भी घनिष्ठ सम्बन्ध है फिर दिव्य पशु तो मानव जीवन की आधारशिला है। वेद में सामान्य और दिव्य पशुओं का पर्याप्त विवेचन हुआ है। गौ और गौ की सन्तान दोनों ही दिव्य पशु है। बड़े सुन्दर-सुन्दर रूपकों और उपमानों से वेद में गौ-महिमा गायी गयी है।

धर्मानुकूल आचरण

वेद व्यास का कथन है–

न रणे विजयाच्छूरो ज्ञानान्नैव च पण्डितः।
न वक्ता वाक्पटुत्वेन न दाता चार्थदानतः॥

इन्द्रियाणां जयाच्छूरो धर्माचारीद्धि पण्डितः।
हितं प्रवक्लसौ वक्ता दाता सम्मानदानतः॥

शूर कौन है, पण्डित कौन है, वक्ता और दाता कौन है। केवल रण में विजय प्राप्त करने से ही कोई शूर नहीं बन सकता, वास्तविक शूर वह है जो अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे। वैसे ही केवल विद्याध्ययन और ज्ञान से कोई पण्डित नहीं बन जाता। पण्डित तो यथार्थ में वह है जो विद्याध्ययन के साथ-साथ अपना आचरण भी धर्मानुकूल रखे। केवल वाणी की चतुरता से ही

किसी को वक्ता नहीं मान लेना चाहिए, वक्ता तो यथार्थ में वह है जो कल्याणकारी बातें कहे, भलाई की बात कहे। यही बात दानियों की भी है। धनदान के साथ-साथ दाता का जीव-मात्र पर दया करना और उनका सम्मान करना ही यथार्थ दान है।

भगवान् के प्रति हमारा भाव शुद्ध हो सके और उनके प्रति हमारा समर्पण शुद्ध हो इसके लिए एक और आवश्यक प्रतिपाद्य विषय है, अहिंसा। अहिंसा को परम धर्म कहा गया है।

परमधर्म-श्रुति विदित अहिंसा मन, वचन तथा कर्म से किसी का भी अनिष्ट नहीं चाहना, यही वास्तविक अहिंसा है। ऐसा करने से सभी ओर हमारी दृष्टि मित्रवत् होगी। सभी हमारे मित्र होंगे और हमारा जीवन कल्याणमय होगा। यह सृष्टि भगवान् का मंगलमय विधान है। ऐसा मानना, जानना और प्राणी मात्र से प्रेम व्यवहार करना ही जीवन का आदर्श है। सभी में भगवान् है, यही जानकर सबसे आदर तथा प्रेम का व्यवहार करना भी भगवान् के साथ प्रीतिसम्बन्ध है।

सुखी किसको माना जाय यह विचारणीय प्रश्न है। लोग यह समझते हैं कि जिसके पास अधिक धन है, अनेक नौकर-चाकर है, अनेक मोटर कारें है, अथवा जो ऊँचे-ऊँचे पदों पर आसीन हैं-जैसे जज, कलक्टर, कमिश्नर, गवर्नर आदि, शायद वे लोग बहुत सुखी हैं जिसके पास ये सारी सुविधाएँ नहीं हैं या कोई सुविधा नहीं है, वह दुःखी, दीन और दरिद्र है। किन्तु ऐसा सोचना पूर्णतः गलत है। ऐसे सम्पन्न व्यक्ति से जिसे सुखी समझा जाता है यदि जाकर पूछा जाय तो वह यही उतर देगा कि मैं सुखी नहीं हूँ। जिसे तुम सुख समझते हो, वह केवल विडम्बना है। जनसाधारण के विचार में ये सारी साधारण वस्तुएँ सुख देने वाली प्रतीत होती है। किन्तु जिनको ये वस्तुएँ प्राप्त है, वे अनेकानेक चिन्ताओं से ग्रस्त है। चिन्ताओं का पहाड़ उनके सामने खड़ा है और उन्हें सन्तोष नहीं है। एक इच्छा की पूर्ति हुई, एक चिन्ता दूर हुई कि दूसरी इच्छा, दूसरी चिन्ता सम्मुख उपस्थित हो जाती हैं इसी प्रकार उनके अन्दर इच्छाओं का और चिन्ताओं का ताँता लगा रहा है जिनके समाधान में उनका सारा जीवन व्यतीत हो जाता है और उनको सुख प्राप्त नहीं होता।

सुखी किसे कहें और दरिद्र किसे कहें, इसके विषय में शास्त्रकारों का मत है-

को वा दरिद्रो हि विशालतृष्णः,
श्रीमाश्चं को यस्य समस्ततोषः।

जीवन्मृतः कस्तु निरुद्यमो यः,
किंतामृतं स्यात् सुखदा निराशा।।

पहली पंक्ति में जो प्रश्न है वह है–दरिद्र कौन है? और इसका उत्तर है–जिसे बहुत तृष्णा हो। दरिद्रता के निवारण के लिए तृष्णा का त्याग आवश्यक है। तृष्णा क्या है? इच्छाओं की पूर्ति की प्यास। जिनके मन में अनेकानेक इच्छाएँ हैं, जिन्हें इच्छाओं की पूर्ति की प्यास लगी है, उनकी एक इच्छा की किसी प्रकार पूर्ति हुई कि दूसरी इच्छा व्यक्त हो जाती है। इस प्रकार जिसके मन में इच्छाओं का ताँता लगा रहता है, जो तृषित व्यक्ति है, वह सम्पूर्ण वैभवों से सम्पन्न भी क्यों न हो, उसे वास्तव में दरिद्र ही कहना चाहिए। वैभव सम्पन्न होने से ही कोई सुखी नहीं माना जा सकता, यदि उसने तृष्णाओं का त्याग नहीं किया।

दूसरा प्रश्न है–श्रीमान् कौन है? श्रीमान् अर्थात् लक्ष्मी सम्पन्न व्यक्ति वह है, जिसे सब प्रकार का संतोष हो, केवल धन होने से कोई श्रीमान् नहीं बन सकता, धन तो चिन्ताओं और भय का कारण है। संतोष का यह अभिप्राय नहीं कि हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहें और कोई काम–धंधा न करें। इसकी भी शास्त्रों ने निन्दा की है। परमपिता परमात्मा ने जो सम्पदा दी है, उनकी अनुकम्पा मानकर उसकी उत्तरोत्तर उन्नति करनी चाहिए, इसी को पुरुषार्थ कहते हैं। इसी के विषय में प्रश्नोतर श्लोक की तीसरी पंक्ति में है। उद्यम करने को पुरुषार्थ कहते हैं। यह कर्मभूमि है, यहाँ काम करना है और काम भी वही करना है, जिससे उन्नति हो।

जो व्यक्ति काम नहीं करता–निरुद्यमी है, वह जीवित रहते हुए भी मृतक हैं जीवन में काम करने की बड़ी महत्ता है। जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त अलग–अलग यथोचित कर्मों का विधान है। मनुष्य पहले बालक, बाद में युवा और उसके बाद वृद्ध गिने जाते हैं। वाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य का, युवावस्था में गृहस्थाश्रम का तथा वृद्धावस्था में वानप्रस्थ और सन्यास का विधान है और उनके लिए अलग–अलग कर्तव्य निर्धारित है। दूसरे शब्दों में अवस्थानुसार बताए हुए कर्मों का यथावत् पालन करने का ही नाम 'पुरुषार्थ' है। जब तक शरीर में प्राण है, तब तक कर्तव्य करते रहना चाहिए, किसी दूसरे पर आश्रित तथा निर्भर नहीं रहना चाहिए। किसी भी आत्म–निर्भर पुरुषार्थी के लिए शरीर को भी स्वस्थ रखना आवश्यक है, जिसके लिए बहुत से नियम और उपनियम बनाये गये हैं। यहाँ उन समस्त नियमों और उपनियमों के विवेचन की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना ही मानना और जानना चाहिए कि पुरुषार्थ के लिए अपने शरीर को सदा स्वस्थ रखने की विशेष आवश्यकता है।

भगवद्-भजन अमृत है। इस अमृत का पान तो केवल संत-महात्मा करते हैं। भगवद्भजन में जो अमृततुल्य आनन्द है, उसका रसास्वादन करना तो संत ही जानते हैं। यही कारण था कि पूर्व काल में अनेक राजा-महाराजा अपनी सारी सम्पत्ति, राज्यवैभव तथा सम्पूर्ण कामनाओं का त्याग कर अंत में संतों की शरण में आते थे और वहाँ रहकर ईश्वर भजन रूप में अमृत का पान करते थे, एवं जीवनमुक्त हो जाते थे। राजा-महाराजाओं को कौन-सी वस्तु अप्राप्त थी, जिसे भगवान् से प्राप्त करने की उन्हें अन्त समय में इच्छा हुई और जिसने उन्हें ईश-भजन में लगाया? इसका उत्तर है कि उन्हें सब प्रकार सुख भले ही प्राप्य रहा हो किन्तु वास्तविक सुख तो उस अमृत पान में है जो केवल संत-महात्माओं को ही प्राप्त है और वह समस्त सुख-भोग को छोड़कर भगवान् के निष्काम भजन में ही है।

निष्काम भक्ति का ही प्रतिपादन सम्पूर्ण गीता में है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने श्रीमुख से कहा-

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

भगवान् की अनन्यशरणागति में ही अनन्त अमृत भरा है। सब प्रकार की आशा-तृष्णाओं का त्याग करके भगवान् की शरण में जाओ, भगवान् तुम्हें समस्त पापों से और उनसे उत्पन्न होने वाले दुखों से अवश्य मुक्त कर देंगे, इसमें तनिक भी संदेह न करो। यह भगवद् वचन है।

कबीरदास भी कह गये हैं-

जो सुख पायो राम भजन में, जो सुख नाहीं अमीरी में।

इसलिए अमृत पाने की इच्छा हो तो संतों की शरण में जाओ और सब इच्छाओं का त्याग करके उनसे भगवद् भजन करना सीखो। यही सब धर्मों का सार और पूर्ण ऐश्वर्य है।

चाह का फंका जो करे, उसका नाम फकीर।

इच्छाओं का दमन करना और उन पर विजय प्राप्त करना ही यथार्थ सुख है, जो संतों के संसर्ग से ही प्राप्त होता है। संत बार-बार यही कहते हैं-

जाल लिए जम फिरत अहेरा, हरि विमुखन पर देत उडेरा।

भक्ति खण्ड

भक्ति

भारतीय वाङ्मय में व्यापक और निर्विवाद रूप से इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है कि भगवत् प्राप्ति ही मानव जीवन का लक्ष्य है। अच्छी समाज–व्यवस्था, सुदृढ़ शासन–व्यवस्था और शिक्षा, दीक्षा, चिकित्सा, मठ, मंदिर, तीर्थ, आश्रम आदि की सार्थकता केवल इसी बात में है कि मनुष्य इन सुविधाओं को पाकर भगवान् को प्राप्त करने की दिशा में प्रयत्नशील हो और अपनी सारी जीवनचर्या ऐसे ढंग से ढाले जिससे वह भगवान् को पा सके। श्रीमद्भागवत में मानव को भगवान् की सर्वश्रेष्ठ रचना कहा गया है और इस बात को अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में उपन्यस्त किया गया है कि समूचे विश्व की रचना कर लेने पर भी ईश्वर को अपने निर्माण कार्य से तब तक प्रसन्नता नहीं हुई जब तक उसके हाथ से मनुष्य का निर्माण नहीं हुआ। मनुष्य का निर्माण हो जाने पर ही उसे प्रसन्नता हुई और उससे अच्छी और कोई रचना सम्भव न होने के कारण ही, मनुष्य की रचना के बाद भगवान् ने अपने रचना–व्यापार से विराम ले लिया। भागवतकार ने मनुष्य की रचना से भगवान् के संतोष और प्रसन्नता का कारण एकमात्र यही बताया है कि मनुष्य में ब्रह्मतत्त्व को समझने की प्रतिभा और उसे आत्मसात् करने की क्षमता है। इससे स्पष्ट है कि ब्रह्मप्राप्ति ही मानव जन्म की सार्थकता है। भागवतकार का वचन इस प्रकार है–

> सृष्ट्वा पुराणि विविधान्यजयात्मशक्त्या, वृक्षान्सरीसृपपशून्खगदंशमत्स्यान्।
> तैस्तैरतुष्टहृदयः पुरुषं विधाय, ब्रह्मावलोकधिषणं मुदमापदेवः।।

इस लक्ष्य की प्राप्ति के तीन साधन शास्त्रों में बताये गये हैं–कर्म, ज्ञान और भक्ति। कर्म का अर्थ है विभिन्न ऐहलौकिक और पारलौकिक फलों के लिए शास्त्रविहित कर्मों तथा अधम योनियों में जन्म और विभिन्न नरकों के प्रापक शास्त्र निषिद्ध कर्मों का त्याग करते हुए नित्य नैमित्तिक कर्मों का अनुष्ठान। किंवा निषिद्ध कर्मों से दूर रहकर अपने सभी लौकिक और शास्त्रीय कर्मों को भगवान् को अर्पण करने की बुद्धि से सम्पादित करना। जैसा कि भगवद्गीता में कहा गया है–

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्,
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्।।

फल बुद्धि का त्याग कर शुद्ध भगवद् अर्पण बुद्धि से कर्मों का अनुष्ठान करते हुए जीवन यापन करने से मनुष्य को भगवान् की प्राप्ति होती है। ज्ञान का अर्थ है समूचे जगत् को और उसकी उत्तमोत्तम उपलब्धियों को नश्वर और दुःखमय समझ कर उसमें आसक्त न होते हुए शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार। यह साक्षात्कार जब ऐसे रूप में परिणत हो जाता है, जिसमें परमात्मा से भिन्न किसी वस्तुका किंचित् भी आभास न होकर एकमात्र भगवत्स्वरूप का ही आभास होता है तब मनुष्य का जगत् से सम्बन्ध टूट जाता है और उसे भगवान् की प्राप्ति हो जाती है। भक्ति का अर्थ है सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा में मनुष्य की अनन्य प्रीति। ऐसी प्रीति जिसके समक्ष उसे संसार की सारी वस्तु नीरस लगे और एकमात्र भगवान् को देखने, उनसे मिलने और उन्हीं में अपने आपको सदा के लिए समर्पित कर देने की आतुरता हो। यह स्थिति मनुष्य की तभी बनती है, जब उसे भगवद् भक्ति के रसामृत से भरपूर बुद्धि प्राप्त हो जाती है, भगवान् को पाने की व्यग्रता करोड़ों कल्पों के अर्जित पुण्य-पुञ्ज के परिपाक से ही उपलब्ध होती है।

भगवत् प्राप्ति के मार्ग पर चलने वाले तथा लक्ष्य को प्राप्त कर कृतकृत्य साधकों ने एकमत से यह घोषणा की है कि भगवत् प्राप्ति के उक्त तीनों साधनों में भक्ति ही सुलभ होने से सर्वश्रेष्ठ हैं यही कारण है कि महाराज जी अपने दर्शनार्थ आने वाले भक्तों के समक्ष ज्ञान और कर्म की उतनी ही चर्चा करते थे, जितनी भक्ति में अपरिहार्य हो। विशेष रूप से वे भक्तों के समक्ष भक्ति का ही उपदेश देते थे और भक्ति के विभिन्न साधनों में सबसे सरल भगवन्नाम जप करने की ही प्रेरणा प्रदान करते थे। वे मुक्तकंठ से कहते हैं कि नाम और नामी में भेद न होने के कारण भगवन्नाम का जप करने से नामी भगवान् जपकर्ता के हृदय में अपना आवास बना लेते हैं और वही उसे दर्शन देकर कृतार्थ कर देते हैं। इस भक्ति खण्ड में पूज्य श्री महाराज जी के दिए उपदेश के आधार पर भक्ति का परिचय करने का प्रयास किया गया है।

प्रेमाभक्ति

प्राणि-मात्र के जीवन का परम पुरुषार्थ आनन्द ही तो हैं क्योंकि आनन्दोपलब्धि से ही दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति सम्भव है। आनन्द का अधिष्ठान यह प्रपंच नहीं

है, बल्कि आत्मा ही हैं। मनुष्य का स्वभाव है कि आनन्द की खोज में लगा रहे। बहिर्मुखी वृत्ति होने के कारण आनन्द की अनुभूति भी बाह्य चेतना से ही होती है इसीलिए उस आनन्द की अनुभूति भी बाह्य चेतना से ही होती है। उस आनन्द से जीव की तृप्ति नहीं होती। पूर्णानन्द स्वरूप परब्रह्म का सामुख्य निर्भरा प्रेमाभक्ति से ही सम्भव है। इसीलिए प्रेम ही आनन्द का साधन तथा साध्य है।

भगवत्प्रेम ही विश्वप्रेम है और वही परमानन्द है। आनन्द और प्रेम दोनों की प्रक्रिया एक है। आनन्द में अहम् का बन्धन क्षीण हो जाता है और प्रेम में भेद दृष्टि समाप्त हो जाती हैं जब तक जीव अहंता और ममता से आवृत्त रहता है, उसमें भेद-भाव भी रहता है और वासनाजन्य प्रेम भी। प्रेम से जब वासना का भाव विच्छिन्न हो जाता है तो विशुद्ध आनन्द की प्राप्ति होती हैं इसलिए आनन्द की उत्कट इच्छा ही प्रेम कहलाती हैं। प्रेम को आनन्द का सान्द्र प्रकाश कह सकते हैं। प्रेम में दुःख का अत्यन्ताभाव होता है और आनन्द में दुःख की आत्यन्तिक निवृत्ति। भगवत्प्रेम ही आत्यन्तिक सुख है वही नित्य है और वही निरपेक्ष है क्योंकि वह भगवान् के प्रति होता है, जो नित्य और परमानन्द स्वरूप है। योगी के आनन्द और भक्त के आनन्द में थोड़ा-सा भेद यह है कि योगी का आनन्द निस्तरंग समुद्र के समान है और भक्त का आनन्द सतरंग समुद्र के सदृश। आनन्द में लीला की अनुभूति होती रहती है और लीला तरंगों के विलास से भक्त का मन प्रफुल्ल और उल्लसित रहता है।

प्रेम आज के युग की माँग है। घोर-से-घोर भौतिकवादी मानव भी प्रेम की तलाश में है। मानवतावाद इस प्रेम का ही भौतिक रूप है। परन्तु जड़ोन्मुख होने के कारण मानवतावाद में न तो स्थायित्व है और न निरपेक्षता ही। भगवत्प्रेम निस्सीम के प्रति होने के कारण देश और काल से अतीत होता है, जबकि बुद्धिजीवी का प्रेम देश और काल की सीमाओं से परिसीमित होकर संकीर्ण हो जाता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो भगवत्प्रेम वास्तविक विश्वप्रेम ही है। स्वार्थत्याग भगवत्प्रेम का मूल है और आनन्द उसका फल। परम प्रेमास्पद सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् को प्राप्त करने का एक मात्र सरल उपाय प्रेमलक्षण भक्ति है। यह साधन भी है और साध्य भी। इस मार्ग में कठिन योग साधनों अथवा यौगिक क्रियाओं द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध नहीं करना पड़ता, केवल उनकी दिशा बदल देनी पड़ती है। सम्पूर्ण सृष्टि में भगवान् की चित् और आनन्द शक्ति का अनुभव करना तथा उसी प्रकार व्यवहार करना ही भगवत्प्रेम का स्वरूप है। इस प्रक्रिया से मानव उस दिव्य चेतना का साक्षात्कार करता है, जो

विशुद्ध आनन्दस्वरूप है। उपास्य का स्वरूप उसमें विनिक्षिप्त हो जाता है और मन तद्भाव भावित होकर तदाकार वृत्ति युक्त हो जाता है। इसी को भाव-भक्ति, परा-भक्ति, रागानुगा-भक्ति या प्रेमलक्षणा भक्ति कहते हैं।

प्रेमाभक्ति और भाव भक्ति

संतों में दो प्रकार के भक्त प्राप्त होते हैं एक वह जो प्रेमाभक्ति में आस्थावान् होते हैं और दूसरे वह जो भाव भक्ति में आस्थावान् होते हैं। इनमें प्रथम श्रेणी के भक्त प्रेमोपासक और दूसरी श्रेणी के भक्त भावोपासक कहे जाते हैं। प्रेम का अर्थ है चित्त की सान्द्रावस्था और भाव का अर्थ हैं चित्त की द्रवावस्था। आशय यह है कि साधक का चित्त जो भगवान् को आलम्बन कर द्रवित हो जाता है उसमें पूरी दृढ़ता न होने पर भगवत् प्रतिबिम्ब चंचल बना रहता है जब वह चित्त का द्रव स्थिर हो जाता है और उसमें भगवत् प्रतिबिम्ब स्थायित्त्व प्राप्त कर लेता है तो वही प्रेम बन जाता है। इस प्रकार भाव और प्रेम दोनों एक ही चित्तवृत्ति की दो अवस्थायें हैं इनमें प्रेम ही भक्ति का चरम साध्य है–

प्रेम भगति जो वरनिन जाई, सोइ मधुरता सुसीतलताई।।

गोस्वामी तुलसीदासजी प्रेमाभक्ति को निर्भरा भक्ति कहते हैं और भगवान् राम से इसी की कामना भी करते हैं–

भक्ंति प्रयच्छ रघुपुंगव! निर्भरां मे कामादि दोष रहितं कुरु मानसं च।

इन निर्भर प्रेमाभक्ति के स्वरूप को गोस्वामीजी ने सुतीक्ष्ण की दशा में चित्रित किया है–

निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाय सो दसा भवानी।।
दिसिअरुविदिसपंथ नहिं सूझा। को मैं चलेऊ कहाँ नहीं बूझा।।

प्रेम और भगवान् में कोई अन्तर नहीं हैं भगवान् के विराट रूप की अनुभूति और उसमें तादात्म्य प्रेम के बिना सम्भव ही नहीं है। भगवत्कृपा से ही प्रेम की प्राप्ति सम्भव है। उस समय सब कुछ भगवन्मय हो जाता है–

'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।।'

प्रेम की प्राप्ति होने पर विधि–निषेध का बन्धन भी नहीं रहता है। प्रेम एक भावमय बन्धन है जो नाश का कारण रहने पर भी नष्ट नही होता–

सर्वथाध्वंसरहितः सत्यपि ध्वंसकारणे।
यद्भाव बन्धनं यूनोः तत्प्रेम परिकीर्तितम्।।

प्रेम में विषयासक्ति का अवसर ही नहीं होता क्योंकि भगवदाकार वृत्ति में विषयों की सत्ता ही कहाँ है? प्रेम न मर्यादा है और न विवेक। लौकिक प्रेम में वासना रहती है। उसकी पूर्ति से प्रेम की निवृत्ति हो जाती है परन्तु भगवत्प्रेम अलौकिक होता है। ज्ञान भी प्रेम के सामने तुच्छ है–

'ज्ञानमेव तुलितं तुलायां प्रेम नैव तुलितं च तुलायाम्'।

ज्ञानी को तो विवेक द्वारा पर–वैराग्य की प्राप्ति होती है परन्तु प्रेमी को वह स्थिति अनायास ही प्राप्त हो जाती है क्योंकि वह सम्पूर्ण दृश्य प्रपंच को भगवान् का ही शरीर मानता है परन्तु भगवान् अपने शरीर से अलग भी है। इसी प्रकार प्रेमी चेतन सत्ता से अपने शरीर अलग भी है। समष्टि रूप में जो ईश्वर की चेतन सत्ता है–व्यष्टि रूप मे वही प्रेमी की है–इसलिए दोनों एक ही है–यही ज्ञानी का कैवल्य या स्वरूपावस्थिति है। इस प्रेम लक्षणा भक्ति का अनेक ग्रन्थों मे विस्तार से विवेचन हुआ है। प्रेम की आठ भूमिकाएँ होती है–

आदौ श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथ भजनक्रिया।
ततोऽनर्थनिवृतिः स्यात्ततो निष्ठारुचिस्तथा।।

अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।

श्रद्धा, साधु संगति, भजन, अनर्थ निवृत्ति, भजन में निष्ठा तथा रुचि, आसक्ति, भाव और प्रेम–यह प्रक्रिया बतायी गयी है।

प्रायः सभी आचार्यों ने भगवत्प्रेम को ही भक्ति का चरम साध्य माना है। आचार्यों के अतिरिक्त शाण्डिल्य और नारद के भक्तिसूत्र भी प्रसिद्ध है। शाण्डिल्य भक्ति सूत्र में, **'सा परानुरक्तिरीश्वरे'** अर्थात् ईश्वर में परम अनुरक्ति को ही भक्ति कहा है।

भक्तिनिष्ठा और ज्ञाननिष्ठा

भक्ति की परिपाकावस्था में भक्त और भगवान् के भेद की निवृत्ति मानने पर यह प्रश्न उठता है कि यदि यही वस्तु स्थिति है तो इन निष्ठाओं में भेद क्या है? इन निष्ठाओं में वास्तव में कोई भेद नहीं है। भेद केवल अन्तिम अनुभूति को प्राप्त करनेकी इनकल प्रक्रियाओं में है, लक्ष्य की दृष्टि से इनमें कोई भेद नहीं है। ज्ञान निष्ठा में ईश्वर के शुद्ध निर्विशेष स्वरूप की उपासना की जाती है और भक्ति निष्ठा में साकार, सविशेष की। भक्त भी ज्ञानी हो सकता है और ज्ञानी भी भक्त। ज्ञानी भक्त, भक्ति द्वारा इस तत्त्व का निर्णय करता है हाँ, वह उस आनन्द

से वंचित हो जाता है जो भक्त को प्राप्त होता है। जैसे नन्द्रिका चन्द्र से अलग नहीं, उसी पप्रकार भक्ति ज्ञान से अलग नहीं जिस प्रकार समुद्र की तरंगें समुद्र का ही अभिन्न अंग है, उसी प्रकार भक्ति ज्ञान का ही अभिन्न अंग है। भक्त अपनेको समर्पित करके निश्चिन्त हो जाता है, उसे संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण अथवा नित्य नैमित्तिक तथा निषद्ध कर्मों की कोई चिन्ता नहीं रहती है, वह तो भगवान् की गोद में बैठा रहता है अबोध बालक की तरह। ज्ञानी को इन सबकी चिन्ता होती है और तत्त्वज्ञान से वह इनका निराकरण करता रहता है। इसलिए जो भगवत् वप्रेम में उन्मत्त है, वह तो तत्त्वज्ञान की चिन्ता ही नहीं करता। उसका तत्त्वज्ञान तो भगवदाकार वृत्ति ही हैं उसके लिए विद्या-अविद्या आदि में कोई भेद नहीं। ज्ञानी को अविद्या अथवा माया से मुक्त होना पड़ता है। जो आचार्य भक्ति को ज्ञान के साधन रूप में स्वीकार करते हैं, वह भक्ति वास्तव में वैधी अथवा साधनरूपा भक्ति है, क्योंकि प्रेमाभक्ति में तो ज्ञान की इच्छा नहीं होती। इसका अर्थ यह नहीं है कि भक्त अज्ञानी ही रहता है। भक्त क ज्ञान की पपरिधि इस साारे प्रपंच में व्याप्त है, क्योंकि वह उसमें ही भगवद् दर्शन करता है। ज्ञानी की दृष्टि में परमार्थ तत्त्व के सारि माया का कोई सम्बन्ध वही नहीं हैं भक्त भेद में अभेद देखता है, जबकि ज्ञानी भेद को देखनाही नहीं चाहता है। ज्ञानी को विवेकख्याति के द्वारा विषयों से वैराग्या होता है। भक्त की विषयों में दोषदृष्टि ही नहीं होती, फिर वैराग्य का प्रश्न ही कहाँ है? दीर्घ साधना के पश्चात् ही ज्ञानी को समाधि प्राप्त होती है, जबकि भक्त हर समय भाव समाधि में रहता है और निरन्तर प्रपंच वमें भगवत्लीला का साक्षात्कार करता रहता है। वह स्वभाव से ही विदेह है। ज्ञानी का देहाध्यास अभ्यास से छूटता है भक्त को अपने प्रेम में अनन्यता लानी होती हैं। उसी से विषयों से आसक्ति छुट जाती है। उसकी आसक्ति भी भगवन्मय है क्योंकि सारे विषय ही ीगवन्मय वहै। भक्त का यह अनन्य भावही पेम कहलाता है। ज्ञानी को सारे प्रपंच का अत्यंताभाव करना पड़ता है, तब उसकी ब्राह्मी स्थिति होती है और परमात्मा की प्राप्ति होती हैं भक्त का जीव भावभी बना रहता है, कर्ता-भोक्तापन भी बना रहता है और उसे परमानन्द की प्राप्ति भी हो जाती है। ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्द में वही अन्तर है जो समुद्र की निस्तरंग और सतरंग अवस्था में है तथा चन्द्रमा की चन्द्रिका सहित और चन्द्रिका रहित स्थिति में है। ज्ञानी को व्यवहार में सब कुछ करना पड़ता है, परन्तु केवल साक्षी भाव से। इसलिए यह स्थिति बड़ी कठिन है। भवसागर को पार करने के लिए उसे अपने ही प्रयत्नों का अवलम्ब लेना पड़ता है, जब कि भक्त भगवान्

की गोद में बैठकर भवसागर को पार करता है। गीता में भगवत् तत्त्व को प्रापत करने वालों की कोटियाँ गिनाई गई है–

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुनः।
आत्तों जिज्ञासुरथायों ज्ञानी च भरतर्षभ।। (गीता 7। 16)

'वायुदेवः सर्वम् इति' का सिद्धान्त भक्त का ही हैं असल बात तो यह है कि कर्म, ज्ञान और उपासना में भेद मानना अज्ञान का ही फल है। ज्ञान अथवा भक्ति का अहंकार भी अज्ञान ही समझना चाहिए। तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति के लिए ज्ञानी भक्ति को साधन बताता है, जबकि भक्त के लिए भक्ति ही साध्य है। ज्ञनी जिस अवस्था को ज्ञानावस्था कहता है, भक्त की वह प्रेमावस्था है और यागी जिस अवस्था को ज्ञानावस्था कहता है भक्त की वह भी प्रेमावस्था है और यागी की, निर्विकल्पक समाधि है। भक्ति भावनास्वरूपा है और ज्ञान बोधस्वरूपा। भक्त पहले अपने शरीर को चिन्मय बनाता है और उस चिन्मय शरीर के माध्यम से ही चिन्मय भगवान् के दर्शन करता है। वही उसका सच्चा आनन्द हैं उसका आनन्द तो अज्ञानी रहने में ही हैं विचार, विवेक और बोध से ज्ञानी का आनन्द कुण्ठित हो जाता है–क्योंकि विवेक में भाव के लिए और भाव में विवेक के लिए कोई स्थान नहीं है। प्रेमी अपने प्रेमास्पद में अवगुणों अथवा दोष्सों की कल्पना कर ही नहीं सकता, क्योंकि उसे लिए प्रेमास्पद से भिन्न कोई स्थान नहीं है। प्रेमी अपने प्रेमास्पद में अवगुणों अथवा दोषो की कल्पना कर ही नहीं सकता, क्योंकि उसके लिए प्रेमास्पद से भिन्न कोई पदार्थ है ही नहीं। उसके नाम, स्वरूप, लीला, धाम आदि मकें लीन होना ही उसका चरम लक्ष्य है।

भागवतकार ने ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य बड़े सुन्दर ढंग से किया है। भगवान् के स्वरूप का विवेचन करते हुए भागवतकार लिखते हैं–

वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
बह्मेत्ति परमात्मेति भगवानिति शब्धते।। भागवत् 1, 2, 11

ब्रह्मए परमात्मा और भगवान–ये तीनों एक ही परम तत्त्व की दृष्टि भेद से त्रिविध अनुभूति मात्र है। ज्ञान रश्मि के उदय काल में भगवान् का जो आलोक साधक के शुद्ध, सात्विक हृदय पटल पर प्रतिफलित होता है–उसे ही ब्रह्म कहते हैं। यही आलोक पुंज जब विश्वरूप से साधक के हृदयाकाश में प्रतीत होता है तब उसे परमात्मा कहते हैं। योगी जन हृदय प्रदेश में इस आकाश का दीपमालिका के समान दर्शन करते हैं और उसे जगत् का अन्तर्यामी मानते हैं। ये ब्रह्मानुभव

और परमात्मदर्शन दोनों ही भगवत् तत्त्व के खण्ड या अंश बोध मात्र है। जब उस ब्रह्म का दर्शन उसके अधिषठानभूत विराट में होने लगता है, तब उसे भगवान् कहते हैं। प्रेमाभक्ति के द्वारा ही सर्वदा, सर्वत्र, सर्व रूप में भगवान् के दर्शन सम्भव है। वास्तव में ज्ञान और भक्ति में कोई तात्त्विक भेद नहीं है। भक्ति की पराकाष्ठा ज्ञान हे और ज्ञान की पराकाष्ठा भक्ति। पराभक्ति और पराज्ञान दोनों एक ही वस्तु है। भागवत के माहात्म्य में भक्ति ने ज्ञान और वैराग्य को अपना पुत्र बताया है। नारद ने भक्ति की प्रतिष्ठा पर बड़ा सुन्दर प्रवचन किया है तथा भक्ति को ही कलियुग में एक मात्र अवलम्ब बताया है क्योंकि भक्ति के द्वारा श्सारीर, जाति, ज्ञान आदि अभिमान समाप्त हो जाता है। असल बात तो यह है कि भक्ति से ज्ञान और योग दोनों की ही सिद्धि स्वतः हो जाती है। साकार दृष्टि से जो भगवान् है, निराकार दृष्टि से वही परमात्मा है, ज्ञान दृष्टि से वही ब्रह्म है। भक्त को स्वभाव से ही ज्ञान और रवैराग्य हो जाता है, क्योंकि उसका चित्त निरन्तर एक ओर ही रहता है। इसलिए उसे दुःख भी सहन नहीं करना पड़ता, क्योंकि उसे दुःख निवारक की सदा ही सन्निधि प्राप्त है।

श्रीरामचरित मानस में ज्ञान और भक्ति

गोस्वामी तुलसीदास ने ज्ञान और भक्ति के विवाद को बड़े सुन्दर ढंग से सुलझाया है और तर्कसम्मत रूप से सिद्ध किया है कि ज्ञानमार्ग की अपेक्षा जन साधारण के लिए भक्ति मार्ग ही अधिक सुगम और सरल है। गोस्वामी जी ने जिस सामाजिक पृष्ठभूमि में भक्ति का निरूपण किया है, वह आज की परिस्थितियों में भी सर्वथा अनुकूल और उपादेय है, क्योंकि उन्होंने जीवन के विस्तृत और बहुविध आधारफलक पर भक्ति का चित्रांकन किया है। उनकी भक्ति पद्धति व्यवहार में भी आचरणीय है। मानव जीवन का चरम लक्ष्य गोस्वामी जी परमानन्द की उपलब्धि मानते हैं और उसकी प्राप्ति का सर्वोत्तम मार्ग भक्तिमार्ग को समझते हैं। स्वयं राम से गोस्वामी जी ने यह कहलाया है—

जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम वचन हृदय दृढ़ गहहू।।
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई।।
ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मम कहुँटेका।।

ऐसा कौन व्यक्ति है जो इस लोक में सुख की कामना न करता हो? परलोक में आस्था न रखने वाले इस लोक में तो आस्था रखते ही हैं। गोस्वामी

जी ज्ञानमार्ग के विरोधी नहीं हैं, परन्तु उसे सुलभ और सुखद नहीं समझते, क्योंकि उसमें क्लिष्ट साधना और कठोर तप अपेक्षित है। गोस्वामी जी ने बड़ी शालीनता और नम्रता से अपने पक्ष का प्रतिपादन किया है। निर्गुण और सगुण में अभेद की घोषणा करते हुए भी उन्होंने सगुण पक्ष का ही प्रतिपादन किया। गोस्वामी जी बड़े विनोदी थे। उत्तर काण्ड में वे घोषणा करते हैं–

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा।।

परन्तु तुरन्त ही काग भुशुण्डि जी से ज्ञान का उपहास कराने लगते हैं।

ग्यान विराग जोग विग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना।।
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती।।

पुरुष होने के नाते विज्ञान आदि स्त्रियों पर मोहित हो सकते हैं, कोई बड़ा वैराग्यवान पुरुष ही जिस पर भगवान् की विशेष कृपा हो स्त्री की चपेट से बच सकता है, क्योंकि स्त्री माया का ही स्वरूप है। इस प्रकार ज्ञानी के लिए सदा ही यह सम्भावना बनी रहती है कि माया उसे अपने चक्र में फँसा न ले। भक्ति को यह खतरा नहीं, क्योंकि एक तो 'मोह न नारि–नारि के रूपा' फिर 'पुनि रघुवीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी विचारी।।' भगवान् भी भक्ति के पक्ष में ही रहते हैं। इसलिए माया उनसे डरती रहती है–

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।।

परन्तु गोस्वामी जी का यह तर्क बड़ा हल्का तर्क है। बुद्धिवादियों को इससे संतोष नहीं हो सकता। गोस्वामी जी भक्ति के पक्ष में पहले ही पृष्ठभूमि तैयार कर चुके हैं, इसलिए उनकी यह युक्ति उस संदर्भ में हल्की नहीं पड़ती। उत्तरकाण्ड में ही उन्होंने सनकादिक मुनि, वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि को भक्ति के सम्मुख नतमस्तक कराया है। मुनि वसिष्ठ कहते हैं–

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभि अन्तर मल कबहुँन जाई।।
नाथ एक वर माँगउँ राम कृपा करि देहु।
जनम जनम प्रभु पद कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु।।

वसिष्ठ, विश्वामित्र आदि की उक्तियों पर कदाचित् किसी को विश्वास न हो इसलिए गोस्वामी जी तर्कपुष्ट प्रमाणों से ज्ञानमार्ग की दुरूहता और भक्तिमार्ग की सरलता प्रतिपादित करते हैं। उत्तर काण्ड के अन्त में एक बड़े ही सुन्दर रूपक द्वारा गोस्वामी जी अपनी बात को समझाते हैं–

ईश्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।

सो मायावस भयउ गोसाईं। बध्यों कीट मरकट की नाईं॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई॥

जड़ चेतन की ग्रन्थि यद्यपि मिथ्या है फिर भी मोहरूपी अन्धकार से ग्रस्त जीव इस ग्रंथि को खोल नहीं पा रहा है इस मोह अंधकार को दूर करने का एकमात्र उपाय ज्ञान-दीपक का प्रकाश है उस दीपक को प्रज्वलित करने का विधान गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस रूपक में बताया है। ज्ञानमार्ग की कठिन-से-कठिन साधना और तपस्या से धैर्य का भी धैर्य छूट सकता है, क्योंकि उस मार्ग में अनेक विघ्न हैं। अनेक विघ्नों को पारकर साधक जब ज्ञानमय दीपक को प्रज्वलित करता है तो उस दीपक की 'सोऽहमस्मि' रूप में शिखा प्रज्वलित होती है और ऋतम्भरा प्रज्ञा का उदय होता है, परन्तु जैसे ही प्रज्ञा ग्रंथि को खोलकर स्वरूपानुसंधान करना चाहती है वैसे ही ऋद्धि-सिद्धि के रूप में अनेक झंझावात के झकोरे चलने लगते हैं और वह दीपक बुझ जाता है-

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहिं दीप विग्यान बुझाई॥
ग्रंथि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि विकल भई विषय बतासा॥

अव्यक्त की उपासना दुर्लभ तो अवश्य है, लोहे के चने चबाने हैं। गीता में भी लिखा है-

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ताहि गतिर्दुखं देहवद्भिरवाप्यते॥

इसलिए ज्ञानमार्ग कृपाण की धारा के समान है, जिसने पतन की सम्भावना बहुत ही अधिक है। यदि ज्यों-त्यों करके ज्ञानी को कैवल्य की प्राप्ति हो भी जाये तो वह उस परमानन्द से वंचित रह जायगा जो भक्त को मिलता है, अर्थात् भगवत्प्रेम रूपी आनन्द-

करत कष्ट बहु पावई कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥

और भक्त यदि मुक्ति की इच्छा करे तो भक्ति से उसे वह भी प्राप्त हो सकती है-

राम भजत सोइ मुक्ति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआई॥

गोस्वामी जी ने जिस प्रकार ज्ञानमार्ग की दुरूहता और क्लिष्टता को सिद्ध करने के लिए दीपक का रूपक प्रस्तुत किया, उसी प्रकार भक्तिमार्ग की सरलता सिद्ध करने के लिए भक्ति को चिन्तामणि के सदृश बताया है, जिससे

हृदय में सदा सर्वदा प्रकाश रहता है। न तो काम, क्रोध, मद, लोभ आदि ही सताते हैं और न ही प्रबल अविद्या का अन्धकार। उस चितामणि को प्राप्त करना भी बहुत कठिन काम नहीं है–

पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी संज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान विराग नयन उरगारी॥
भाव सहित खोजइ जो प्रानी। भाव भगति मनि सब सुख खानी॥

और इससे भी सरल उपाय संत समागम है, क्योंकि–

मोरे मन प्रभु अस विस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥
अस विचारि जोइ करि सतसंगा। राम भगति तेहि सुलभ विहंगा॥

इस प्रकार गोस्वामी जी ने ज्ञान और भक्ति का वास्तविक चित्र जनता के सम्मुख प्रस्तुत कर दिया, जिसको पसन्द आये चुन ले।

भक्त के लक्षण

भगवान् को ऐसे ही भक्त-प्राणी प्रिय होते हैं, जिन्हें न कभी हर्ष होता है, जो न द्वेष करते हैं, न शोक करते हैं, न कामना करते हैं तथा जो शुभाशुभ के त्यागी होते हैं। भगवान् गीता में कहते हैं–

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

ऐसे परम भक्तों का शरीर भक्ति के आह्लाद में भगवान् का गुणगान करते-करते पुलकित हो जाता है, वाणी गद्गद् हो जाती है और नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगते हैं तथा वह काम, क्रोध, दम्भ आदि मनोविकारों से मुक्त रहता है। भगवान् श्रीराम कहते हैं–

मन गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरंतर बस मैं ताके॥

श्रेष्ठ भक्त वही है जिसके चित्त में भगवान् के अतिरिक्त दूसरा कुछ नहीं होता है अर्थात् जो अनन्यचेता होता है, वही श्रेष्ठ भक्त है। ऐसे अनन्यचेता भक्त को भगवान् सहज रूप में प्राप्त हो जाते हैं। भगवान् ने कहा है–

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

ऐसा अनन्यचेता भक्त जो मन, वचन और कर्म–तीनों से निष्काम भाव की भक्ति प्रदर्शित करता है, उसके हृदय में ही भगवान् सदा विश्राम करते हैं–

वचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा विश्राम॥

भक्ति और उसके साधन

मोक्ष का श्रेष्ठ तथा सुलभ साधन भक्तियोग है। श्रीनारायण का आधार और भक्तियोग का आश्रय पाकर हृदय निष्काम हो जाता है और बुद्धि स्थिर हो जाती है। अन्य सभी साधनों की अपेक्षा भक्ति का मार्ग सरल है। परन्तु भक्तियोग में ईश्वर का तैल धारावत् सतत अनुसंधान, चिन्तन तथा ध्यान आवश्यक है।

तन से कर्म करै विधि नाना, मन राखै जहँ कृपा निधाना।
मन ते सकल वासना भागी, केवल राम चरण लव लागी॥

वैराग्य से ही ज्ञान और भक्ति दृढ़ होती है। संसार के विषयों में जब तक वैराग्य नहीं आता, तब तक शुद्धभक्ति का आरम्भ नहीं हो सकता–

भक्तिमार्ग के बाधक शत्रु हैं–काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर। इनमें काम, क्रोध और लोभ अत्यन्त प्रबल होते हैं। ये बड़े-बड़े साधकों को भी क्षणभर में ही साधन-पथ से विचलित कर दुःखी बना देते हैं। इनका नाश भगवान् पर पूर्ण विश्वास होने पर भगवत्कृपा से ही होता है। भगवन्नाम का जप जैसे बने करते रहो, भगवान् का आश्रय ग्रहण करने वाला, काम क्रोधादि का नाश कर ही लेता है। इसके निराकरण का उपाय है–भगवद्विश्वास, जो एकमात्र भजन से प्राप्त होता है। अनिच्छापूर्वक ही सही, किन्तु नाम-स्मरण का अभ्यास अवश्य करना चाहिए, वह भी कल्याण का साधन होता है। गोस्वामी जी ने निर्देश किया है–

'भावकुभाव अनख आलसहूँ, नाम जपत मंगल दिशि दसहूँ॥'

जब विश्वास हो जायगा कि नाम-जप से लाभ होता है तो अनिच्छा रहने पर भी जप नहीं छूटेगा।

वास्तविक सुख प्राप्त करने के निमित्त सारे कुतर्कों का त्याग अत्यावश्यक है।

नाम-जप का अभ्यास करते-करते स्वयं नाम से प्रेम हो जायगा और प्रेम की प्रगाढ़ता आ जाने पर भगवान् स्वयं प्रकट हो जायेंगे। वे तो प्रेम के भूखे हैं–

प्रेम ते प्रभु प्रगटहिं जिमि आगी।

फिर तो वे करुणासागर समस्त दुःखों का नाश कर सच्चा सुख प्रदान करेंगे। जब तक हृदय-मन्दिर में चापवाणधारी श्री राम का वास नहीं होता, तब तक लोभ मोहादि दोष मानव को सताते रहते हैं, सच्ची भक्ति प्राप्त होने नहीं देते हैं–

तब लगि हृदय बसत खलनाना। लोभ मोह मच्छर मदमाना।।
जब लगि उ़र न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटिभाथा।।

यह संसार विकट वन की तरह है। इसमें पग-पग पर दुःख और संकट के काँटे बिछे हुए हैं। यहाँ पर भटकने वाले मनुष्यों के लिए एकमात्र भगवान् की भक्ति ही सुखद आश्रय है। मनुष्यों द्वारा किये गये सम्पूर्ण पाप भक्ति की अग्नि में भस्मसात् हो जाते हैं।

भक्ति का स्वरूप

भक्ति प्रेम की अनिर्वचनीय लहर है। इस लहर में प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पद में कोई अन्तर नहीं रह जाता है।। इसमें तीनों एकलय हो जाते हैं। ध्याता, ध्यान और ध्येय एकस्वरूप हो जाते हैं और नव दुर्लभ आध्यात्मिकता की सृष्टि होती है।

वस्तुतः भक्ति एक ऐसी भाव-लहर है जो आराध्य के गुण, माहात्म्य और कृपा का स्मरण कराकर चित्त को द्रवित करती है तथा धाराप्रवाह मन की सारी वृत्तियों को उसी ओर उन्मुख करती है।

आराधना-साधना के अन्य साधनों में जहाँ अनेकशः अर्हताएँ हैं, वहाँ भक्ति के क्षेत्र में बाध्यता नहीं है। भक्ति के अधिकारी अनन्त सृष्टि के सभी प्राणिमात्र है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान् श्री राम के मुखारविन्द से कहलाया है–

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।।

अर्थात् निष्कपट भाव से पुरुष, स्त्री, नपुंसक, चर-अचर जो भी भगवद्‌भक्ति में प्रवृत्त होते हैं वे मेरे लिए परमप्रिय हैं।

भक्ति के लिए भक्त-हृदय में निष्कपटता अनिवार्य है। जो भक्त मद-मोह-कपट छोड़ देता है, भगवान् उसको तुरन्त अपना लेते हैं और ऐसे भक्तों का योगक्षेम स्वयं भगवान् वहन करते हैं। लेकिन यह तभी सम्भव है, जब हम अपनी वृत्तियों को सांसारिक माया-मोह से मुक्त कर लें।

भक्ति की महिमा

भक्ति की महिमा अनिर्वचनीय है। जाति, कुल धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चातुर्य-इन सबके होने पर भी भक्ति रहित मनुष्य जलहीन बादल के सदृश शोभाहीन है–

जाति पांति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई।।
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल वारिद देखिअ जैसा।।
भगति हीन गुन सब सुख कैसे। लवन बिना बहु व्यंजन जैसे।।

जैसे बिना नमक के सभी व्यंजन व्यर्थ हैं, वैसे ही बिना भक्ति के भगवान् को प्रसन्न करने के लिए किये गये जप, व्रत, पूजा आदि अधूरे ही हैं और रहेंगे। अतः भगवत्प्राप्ति के लिए किये गये साधन, भक्तिमय होने चाहिए।

तात्विक दृष्टि से भगवद्भक्ति ही वास्तविक विश्व प्रेम है। परम प्रेमास्पद सच्चिदानन्द स्वरूप भगवान् को प्राप्त करने का एक मात्र सरल उपाय प्रेमलक्षणा भक्ति है। यह साधन भी है और साध्य भी। इस मार्ग में कठिन योगसाधनों अथवा यौगिक क्रियाओं द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध नहीं करना पड़ता, केवल उनकी दिशा बदल देनी पड़ती हैं सम्पूर्ण सृष्टि में भगवान् की चित् और आनन्द की शक्ति का अनुभव करना तथा उसी प्रकार व्यवहार करना ही भगवत्प्रेम का स्वरूप है। इस प्रक्रिया से मानव उस दिव्य चेतना का साक्षात्कार करता है, जो विशुद्ध आनन्द-स्वरूपा है।

भगवान् का स्मरण

भगवान् सर्वव्यापक ही नहीं, हमारे अत्यन्त निकट है। यह सभी जानते और मानते हैं, लेकिन उन्हें नित्यशः भक्तिभाव से स्मरण नहीं करते। कभी कार्य व्यस्तता तो कभी दूसरी अड़चन–इस प्रकार कोई-न-कोई मिथ्याधार रखकर भक्तिभाव से भगवान् के स्मरण में लोग लापरवाही करते हैं। भगवान् का नित्य स्मरण नहीं करना, अपना ही हनन करना है। वे बड़ी भारी भूल करते हैं जो भगवान् के नित्य स्मरण में लापरवाही करते हैं। भगवान् अत्यन्त कोमल-हृदय, दयालु एवं क्षमाशील है। उनकी दया और कृपा पर विश्वास कर मनुष्य को अपने सम्पूर्ण कर्मों को उनके प्रति अर्पण करते रहना चाहिए और यह समझना चाहिए कि जिस दिन हमने श्रद्धा और भक्ति से भगवान् का स्मरण नहीं किया, वह दिन व्यर्थ गया।

एक सन्त का कथन है–

'जे दिन बीते राम भजन में वे दिन आवें गिनती में।'

वही दिन सार्थक है और उसी दिन की जीवन में गणना की जाती है, जिस दिन भजन किया गया हो। भगवान् के साथ थोड़ा-सा भी सम्बन्ध भक्तिभाव से नित्य जोड़ते रहो और कर्तव्य मान कर उनका नित्य स्मरण करो तो भगवान् अपनाने में देर नहीं करेंगे।

सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्मकोटि अघ नासहि तबहीं॥

जिस क्षण मनुष्य भगवान् को सम्मुख मानकर उनका भक्ति पूर्वक आराधन करता है, उसी क्षण उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

पापवंत कर सहज सुभाऊ।
भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥

पापियों का यह स्वभाव ही है कि उनको भगवान् का भजन अच्छा नहीं लगता।

भगवद्दर्शन के साधन

जिस प्रकार यज्ञ में दो अरणियों के संघर्ष से अग्नि प्रकट होती है, उसी प्रकार हृदय के साथ भगवन्नाम के बार-बार के संस्पर्श के फलस्वरूप ज्ञानाग्नि उत्पन्न होती है। एक अरणी राम-नाम है, दूसरी हृदय, दोनों के निरन्तर पारस्परिक सम्मिलन से मन का विक्षोभ मिटेगा और ब्रह्म साक्षात्कार होगा। यदि रस नहीं मिलता, तब भी किसी प्रकार भगवान् का नाम लेते जाओ, कुछ दिनों बाद जब रस मिलने लगेगा तो छुड़ाने पर भी नहीं छुटेगा।

तुलसी बिरबा बाग में सींचे तु कुम्हिलाय।
राम भरोसे जो रहै पर्वत पर हरि आय॥

सदा सच्चिदानन्द भगवान् की आशा ही श्रेष्ठ है। मनुष्य सदा ईश्वर को सम्मुख जाने तो पाप नहीं करेगा। उसे स्मरण रखना चाहिए कि सब समय ईश्वर उसके आस-पास है और उसके हृदय में है। वह आजीवन यही समझे कि भगवान् के चरणों का चिन्तन करने के हेतु ही मैं जीता हूँ।

जहं-जहं डोलों सोइ परिकरमा, जो कुछ करो सो सेवा,
जब सोवो तब करो दण्डवत्, पूजो और न देवा।

कहो सो नाम, सुनो सो सुमिरन, खावं-पियो सो पूजा,
गिरह-उजाड़ एक सम लेखो, भाव न राखो दूजा॥

ईश्वरीय और मानवीय विधान

संसार में दो प्रकार की व्यवस्थाएँ देखने में आती है।

एक व्यवस्था मनुष्यों द्वारा निर्मित होती है, जिसे शासन-व्यवस्था कहते हैं, जिसके अनुसार शासन प्रजा की सुखि-सुविधा की संयोजना करता है और बदले में प्रजा शासक को कई प्रकार के कर देती है।

ठीक इसके विपरीत भगवान् की अपनी व्यवस्था है, जो बड़ी ही सरल, सुलभ और सस्ती है। भगवान् की इस व्यवस्था का नाम भगवत्कृपा है। अपने द्वारा दी हुई वस्तुओं का कोई भी मूल्य भगवान् नहीं लेते। भगवान् तो करुणानिधान है। उनकी अहैतुकी कृपा सदा सब पर बरसती रहती है।

यही दो विधान है-एक मानुषी विधान, दूसरा ईश्वरीय। मनुष्यकृत विधान कटु, अपर्याप्त और परिणाम में दुखदायी है, जब कि ईश्वरीय विधान दयापूर्ण, पर्याप्त और सुखदायी है। यथार्थ में कोई तुलना ही दोनों में नहीं हो सकती।

यहाँ एक विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है। एक ओर तो शासक जनता की सुविधा के लिए जनता से कर के रूप में कुछ द्रव्य लेता है, तभी वह जनता की सुख-सुविधा की व्यवस्था करता है। दूसरी ओर भगवान् ने अनेकानेक वस्तुएँ मनुष्य को प्रदान कर रखी है और कर रहे हैं तथा अपनी दया की धारा सतत बरसा रहे हैं, किन्तु इसके बदले में वे लोगों से कुछ नहीं लेते। ऐसी दशा में उनके प्रति विवेकशील प्राणी होने के नाते मनुष्य का कोई कर्त्तव्य है या नहीं?

इस प्रश्न का उत्तर बहुत गम्भीर है। ईश्वर और जीव के सम्बन्ध पर शास्त्रो में जो कुछ लिख गया है, उसके अध्ययन से जीव का कर्तव्य स्पष्ट होता है कि भगवान् से वह जुड़ा रहे, उनसे विलग या विमुख नहीं हो। भगवान् की करुणा और दया उतनी ही मात्रा में प्राप्त होती जायगी।

भगवान् के साथ इस सम्बन्ध को उपासना कहते हैं। उपासना का अर्थ है-उप अर्थात् निकट और आसन अर्थात् स्थित होना। भगवान् के निकट होने का नाम ही उपासना है। उपासना कभी व्यर्थ नहीं जाती, मनुष्य जो कुछ करेगा, उसका फल उसे मिलेगा। भगवान् ने जो आश्वासन दिया है वह बड़ा उत्साहप्रद है; इसका उल्लेख पहले भी हो चुका है-

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।

भगवान् की घोषणा है कि जो एक बार मेरी शरण में आकर यह कह देता

कि हे भगवान् मैं तुम्हारा हूँ और मुझसे रक्षा की प्रार्थना करता है, उसे मैं सभी प्राणियो से अभय कर देता हूँ–यह मेरा व्रत है।

नाम-जप का साधन

भक्ति के साधनों में भगवान् का नाम-जप एक सरल, सहज और सुगम साधन है। भगवान् राम ने शबरी को नवधाभक्ति का उपदेश देते हुए नौ साधनों में नाम-जप को भी स्थान दिया है। भक्ति के नौ साधन बताते हुए वे पाँचवें साधन का उपदेश करते हैं–

मंत्र जाप मम दृढ़ विस्वासा। पंचम भजन सो वेद प्रकासा।।

भगवान् राम का अभिमत है कि दृढ़ विश्वास क़े साथ मेरे मंत्र का जाप करना ही भजन नामक पाँचवाँ साधन है। भगवान् राम का कौन-सा मंत्र है? वही राम-नाम।

भगवान् कृष्ण ने यज्ञों में जप यज्ञ को प्रधानता दी है वे गीता में अर्जुन से कहतें हैं–

यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।

भगवान् कृष्ण स्पष्ट घोषणा करते हैं कि जितने भी यज्ञ है–द्रव्ययज्ञ, योगयज्ञ, तपयज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ, ज्ञानयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, देवपूजन यज्ञ, आत्म-संयम यज्ञ, जपयज्ञ आदि उनमें भगवान् की विभूति जप-यज्ञ में ही वास करती है। भगवान् उसे सुगमता से मिलते हैं, दर्शन देते हैं, उसके निकट पहुँचते हैं, जो अनन्यचित्त से नित्य, प्रतिपल, प्रतिक्षण भगवान् का स्मरण करता है। गीता में भगवान् कृष्ण का उद्घोष है–

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः। तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

नाम का स्मरण नित्य हो, सतत, निरन्तर हो तो भगवान् सुलभ हो जाते हैं। गोस्वामी जी तो स्पष्टतया मार्ग बताते हुए कहते हैं कि कलियुग में केवल राम नाम का स्मरण, कीर्तन ही भगवद्भक्ति का एकमात्र साधन है–

कलियुग केवल नाम अधारा। राम नाम अवलंम्बन एकू।।

भगवन्नाम की अमोघ शक्ति

संसार में तीन प्रकार के कष्ट हैं–आधिदैहिक, आधिदैविक और आधिभौतिक।

शरीर सम्बन्धी जो कष्ट है, उन्हें 'आधिदैहिक' कहते हैं। आधिदैविक कष्ट वे हैं जो दैव द्वारा होते हैं—जैसे अग्निकाण्ड, सुखा पड़ जाना, बाढ़ आ जाना इत्यादि। आधिभौतिक कष्ट वे हैं जो जीवों द्वारा मनुष्यों को भोगने पड़ते हैं जैसे साँप का काटना, बिच्छू का डंक मारना तथा अन्यान्य छोटे-बड़े जीवों द्वारा मनुष्य शरीर पर आक्रमण। इन्हीं तीन कष्टों या तापों से मनुष्य व्याकुल रहता है। इनसे मुक्ति पाने की सबकी सतत इच्छा होती है और तदनुकूल लोग भाँति-भाँति के प्रयत्न भी करते हैं। इन सब प्रयत्नों में सबसे सरल और सुलभ वस्तु है—भगवन्नाम। भगवान् के नाम और यश में अमोघ शक्ति है। भगवन्नाम के समान पुण्यप्रद संसार में अन्य कोई वस्तु नहीं है। इस कलिकाल में तो इसकी विशेष महत्ता है। अतएव हर व्यक्ति का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह ऐसा अभ्यास बना ले कि उसके द्वारा निरन्तर भगवान् का नाम स्मरण हो तथा सभी अवस्थाओं में भगवन्नाम का जप हो, उसमें कभी त्रुटि न हो। लोग संसार की भोग-वस्तुओं में अपना जीवन बिताते हैं, किन्तु जब भगवान् के नाम-स्मरण के लिए कहा जाताा है तो उत्तर मिलता है-अभी समय नहीं है, फिर कभी कर लिया जायेगा। इस मनोवृत्ति से पतन और विनाश निश्चित है। यह लोक तो गया ही, परलोक भी चला जायेगा। मनुष्य-जीवन साधन क्षेत्र है, ऐसा सबको स्मरण रखना चाहिए। गोस्वामी तुलसीदास ने यथार्थ ही कहा है–

साधन धाम मोक्ष कर द्वारा, पाइ न जे परलोक सँवारा

इसलिए सबको अपने जीवन में ऐसा नियम बना लेना चाहिए कि बिना किसी त्रुटि के वह प्रतिदिन जैसे अन्य सांसारिक काम करता है, भगवन्नाम का भी स्मरण अवश्य करें। सब धर्म-ग्रन्थों और वेदों का भी यही सार है–

'नामैव वेद सारांशं सिद्धान्तं सर्वदा शिवम्'

भगवन्नाम स्मरण का फल क्या है, इसको भी थोड़ा समझ लेना चाहिए। ये बृहस्पति के वाक्य हैं, जो उन्होंने इन्द्र के प्रति कहे थे–

स्नातं तेन समस्त तीर्थ सलिले दत्ता द्विजेभ्यो धरा,
यज्ञानां च हुतं सहस्त्रमयुतं देवाश्च सम्पूजिताः।
स्वाद्वन्नेन सुतर्पिताश्चः पितरः स्वर्गञ्च नीताः पुनः,
यस्य ब्रह्म विचारणे क्षममपि आप्नोति धैर्यं मनः।।

जिसने क्षणमात्र भी परब्रह्म परमात्मा का समाहित मन से चिन्तन किया, उसने समस्त तीर्थों के जल में स्नान कर लिया, राजा बलि की तरह सम्पूर्ण पृथ्वी का सत्पात्र ब्राह्मणों को दान कर दिया, कोटि यज्ञों के अनुष्ठान का फल

प्राप्त कर लिया और अपने पितरों को सुस्वादु अन्न से तृप्त करके उन्हें स्वर्गलोक भी भेज दिया। ऐसा ही फल भगवन्नाम स्मरण करने वाले व्यक्ति को होता है।

मानव शरणागति

ईश्वर की हम सब पर असीम कृपा है कि हमें सुर-दुर्लभ, मानव शरीर प्राप्त हुआ है और भारत-भूमि जैसी पावन भूमि पर हमने जन्म लिया है जहाँ आने को बड़े-बड़े देवी-देवता भी लालायित रहते हैं।

गायन्ति देवाः किलगीतकानि।
धन्यास्तु ते भारत भूमि भागे।।
स्वर्गापर्गास्पद-मार्ग भूते।
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।।

भगवत्कृपा के बिना मनुष्य शरीर पाना दुर्लभ है। जब जीव चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करते-करते थक जाता है, तब परमात्मा करुणार्द्र हो उसे मानव शरीर धारण करने का सुअवसर प्रदान करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है-

नर तन सम नहिं कबनेहुँ देही,
जीव चराचर जाँचत तेही।
कबहुँक करि करुना नर देही,
देत ईश बिनु हेतु सनेही।

मनुष्य जन्म की सार्थकता भगवत्प्राप्ति में ही है। अखिल ब्रह्माण्ड नायक-इस प्रपंच के कर्ता, भर्ता, और संहर्त्ता की शरणागति सभी सांसारिक बाधाओं का नाश करनेवाली तथा सभी सुखों एवं मंगलों की विधायिका है।

सुखी मीन जे नीर अगाधा।
जिमि हरि सरन न एकउ बाधा।।

भगवद्शरणागति जीव को निर्द्वन्द्व एवं निर्भय बनाने वाली हैं शरणागत सब प्रकार से निश्चिन्त एवं निर्भय विचरण करता है।

अनादि काल से यह जीव श्रीनारायण से विलग हो गया है। यह जब सतत निष्ठायुक्त साधना द्वारा पुनः श्री नारायण को प्राप्त कर लेगा, तो फिर यह जगत् नहीं रहेगा, न जीवन नाम की संज्ञा ही रहेगी, सारे शोक-दुःख समाप्त हो जायेंगे।

परमात्मा से भिन्न सांसारिक वस्तुओं का स्मरण ही दुःख का कारण है। जहाँ जगत् है वहीं सुख और दुःख भी हैं, जहाँ जगत् नहीं है वहाँ न तो सुख है और न दुःख ही है, वहाँ तो केवल परमानन्द है। संसार की ओर उन्मुख ममता के प्रवाह को भगवान् के श्री चरणों से जोड़ दो, इसी में कल्याण है।

अमृतोपदेश खण्ड

प्रशंसा और निन्दा

प्रशंसा और निन्दा–दोनों से बचना अच्छा है।

प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो ज़ाना और अपने को उस सराहना के योग्य मान लेना, अनर्थ की जड़ है। इससे मन में अहंकार पैदा होता है, फिर यह शैतान तो सिर पर चढ़कर बोलने लगता है। निंदा सुनकर प्रायः लोग दुःखी हो जाते हैं, अपने मन में क्षोभ का अनुभव करते हैं। इससे निंदक के प्रति द्वेष और हिंसाभाव पनपता है। प्रशंसकों के प्रति राग हो जाता है और निन्दकों के प्रति द्वेष। फिर तो यह राग–द्वेष झमेला खड़ा कर देते हैं और मन को इसी में उलझा कर उसकी एकाग्रता नष्ट करते हैं। मन कमजोर पड़ जाता है। उसकी संकल्पशक्ति क्षीण हो जाती है। मनुष्य राग–द्वेष के वशीभूत होकर अनगिनत विकारों का शिकार हो जाता है और फिर उसके आचरण से समाज का अहित होने लगता है। महापुरुषों ने मानवोचित दयाभाव का जो मार्ग निर्धारित किया है, राग–द्वेष उससे विमुख करते हैं।

राग–द्वेष से बचने के लिए यह आवश्यक है कि प्रशंसा और निन्दा को समभाव से ग्रहण करने की शक्ति विकसित की जाय। दोनों में मन में उद्वेलन होता है, दोनों मन को क्षुब्ध करते हैं। शांताकार वृत्ति में आलोड़न होने लगता है। अतएव प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना और निन्दा सुनकर दुःख करना, उचित नहीं है। महात्मा लोग इसी कारण मान और अपमान दोनों की उपेक्षा करते हैं।

व्यवहार में इसे दूसरे रूप में लो। प्रशंसा सुनकर उसके अनुरूप अपने चरित्र को ढालो। निन्दा सुनकर निन्दा के मूल कारण पर विचार करो और उस दोष से बचो। इस प्रकार प्रशंसा प्रतिभा एवं तेज की समृद्धि करेगी और निन्दा चरित्र को सम्बलित करेगी। इसके लिए भी निरन्तर अभ्यास की जरूरत पड़ती है। यह समभाव सहज प्राप्त नहीं होता। इसके लिए तप करना पड़ता है।

किसी की अकारण निन्दा मत करो, प्रशंसा भी नहीं करो। केवल किसी को प्रसन्न करने के लिए उसकी सराहना और दुःखी करने के लिए उसकी निन्दा करना शील के विरुद्ध है, पाप है। इससे उसके विनाश की भूमिका तैयार होती है और अपना पतन भी होता है।

सुखी कौन?

सुखियों से प्रेम, दु:खियों पर दया और पापियों की उपेक्षा होनी चाहिए। पापियों की उपेक्षा का अर्थ पापियों के पाप-कर्म से घृणा करनी है न कि पापकर्त्ता से। पापियों की उपेक्षा इसलिए करनी चाहिए कि पाप को प्रोत्साहन न मिले, उसका ह्रास हो।

'सुखियों से प्रेम करो, उनका साथ करो' ऐसा इसलिए कहा गया है कि उनके साहचर्य से तू भी सुखी रह सकेगा। लेकिन वास्तव में सुखी तो वही रह सकता है जो परमात्मा से प्रेम करता है, परमात्मा के स्वरूप में स्थित है। परमात्मा से प्रेम करने वाला ही सन्त और महात्मा होता है। गलत सोचता है कि कोट-पैण्टवाला अथवा हवाई जहाज और मोटर से चलने वाला सुखी होता है।

दैहिक, दैविक एवं भौतिक तापों से जिसने अपने को अलग कर लिया, वही जग में सुखी है। इन्हीं तीन तापों से अपने को पृथक् कर लेना पुरुषार्थ है। श्री कपिल मुनि प्रणीत सांख्ययोग के सूत्र में वर्णित है–

अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।

ऐसा पुरुषार्थ कर लेने वाला ही सन्त है–**संत सोई जो काया साधे।**

बहुत धन हो तो उससे सुख नहीं मिल सकता। धन का महत्त्व उसके सदुपयोग में है। धन का संचय दुःखकारक है क्योंकि उसके लिए नाना प्रकार की चिन्ताएँ करनी पड़ती है और जिस मानव को चिन्ताओं ने घेर लिया, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। अतः सुखी होने के लिए धनवान् होना जरूरी नहीं वरन् वैराग्यवान् होना जरूरी है। अर्थ-लोलुपता दुःखरूप है। धन का तो स्वभाव ही होता है–तृष्णा की निवृत्ति नहीं होने देना और तृष्णा जब तक बनी रहेगी, सुख नहीं मिल सकता।

मानव को जब वैराग्य, सुख, शान्ति, तृप्ति, सत्य, क्षमा और सर्वभूत दया–ये सभी गुण प्राप्त हो जाते हैं तो काम, लोभ, तृष्णा और कृपणता आदि स्वतः नष्ट हो जाते हैं। सत्वगुण में स्थित होते ही मनुष्य सुखी हो जाता है। मनुष्य जिस-जिस कामना को छोड़ देता है, उसकी ओर से सुखी हो जाता है, कामना के वशीभूत होकर तो वह सर्वदा दुःख ही पाता है।

यह बात सदैव स्मरण रखने की है कि इच्छाएँ ही दुःख की मूल उत्स है और कामनाओं के रहते सुखानुभूति कदापि नहीं हो सकती। दुःख और

असंतोष–ये काम और क्रोध से उत्पन्न होते हैं। लोभ बड़े-बड़े पाप कराता है और मन को अशान्ति देता है क्रोध में मनुष्य अन्धा हो जाता है और अपना बुरा-भला भी नहीं देख सकता। मोह बड़ा नाच नचाता है और परिणाम में केवल दुःख देता है अतः ये षड्रिपु ही मानव-जीवन में विष घोलते हैं। इनसे यत्नपूर्वक बचना ही सुखप्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होने का अवसर देता है।

यदि चाहते हो कि सुखी रहो और जीवन में शान्ति-लाभ प्राप्त करो तो जो लोग तुम्हारा तिरस्कार करें, तुम्हारा अपमान करें, उन्हें तुम क्षमा कर दो। बदला लेने की भावना मत रखो अन्यथा ग्लानि, ईर्ष्या और पश्चात्ताप की आग तुम्हारी शान्ति को जला देगी। जो कोई तुम्हें कष्ट पहुँचाता है, उसका भी अहित मत करो। तुमसे द्वेषवश यदि कोई अप्रिय व्यवहार करता है तो भी तुम उसकी उपेक्षा कर दो और अवसर मिलते ही उसके साथ प्रेम का मधुर व्यवहार करो। तृप्त और स्वस्थचित्त रह कर जो कुछ मिल जाय, उसी से निर्वाह करो और भगवत्कृपा मानकर प्रभु का धन्यवाद करो। भगवान् बड़े कृपालु है। उनकी शरण में ही शान्ति है। सच्चा सुख तो तृष्णाक्षय से ही मिलता है। जिसने काम की जड़ें काट डाली है, वही सुखी है।

दुःख की जड़ राग-द्वेष में है। व्यवहार में राग-द्वेष से निवृत्त हो जाओ तो सुख ही सुख है। राग-द्वेष वियुक्त होकर विषय भी दुःख नहीं देते। द्वेष की आग सबसे पहले तो दोषी को ही जलाती है। सद्बुद्धि और सत्कर्म से मन निर्मल होता है। जब मन सदैव प्रसन्न रहने लगेगा तो फिर दुःख स्पर्श भी नहीं करेगा। भगवान् ने कृपा करके तुम्हें मानव-तन दिया है, अनमोल थाती दी है। इसमें धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सब कुछ पा सकते हो। जीवन की हर साँस का सदुपयोग करो, संतुष्ट रहो तो मन शान्त और प्रसन्न रहेगा।

संत कौन?

दैहिक, दैविक एवं भौतिक–तीनों तापों से अपने को पृथक् कर लेना ही पुरुषार्थ है और ऐसा पुरुषार्थ कर लेने वाला ही सन्त है–

सन्त सोई जो काया साधे। तजि आलस और वाद विवादे॥
तन जग में, मन हरि के पासा। लोक भाग से सदा उदासा॥

साधु पुरुषों और सन्तों का हृदय वस्तुतः नवनीत के समान कोमल होता है। वे क्रोध भी करते हैं तो कल्याण के लिए। ईर्ष्या से दिया हुआ दण्ड ही बुरा है,

दया से और कल्याण-भावना से दिया गया दण्ड तो आशीर्वाद होता है। काकभुशुण्डि को कौए का शरीर लोमश ऋषि के शाप से मिला था। सगुण-निर्गुण रूप को लेकर उन्होंने ऋषि से हठपूर्वक बहुत विवाद किया था और उनके कोपभाजन बने थें किन्तु लोमश ऋषि ने ही पीछे उनको राममंत्र दिया तथा अविचल रामभक्ति में सुदृढ़ कर, अविद्या से उन्हें स्थायी रूप से मुक्ति दिला दी।

करुणा तो सन्त का स्वभाव है। प्राणियों पर दया करना सन्त की रहनी है। वह सेवा-कार्य और प्रभु-भजन, सोच-समझकर नहीं करता, कार्यक्रम बनाकर नहीं करता। उसकी हर साँस प्रभु की दया ही बाँटती है, उसका प्रत्येक पल सबके कल्याण के लिए होता है।

संत मानापमान से परे, स्तुति-निन्दा से अनजान और व्यवहार में मन-वचन कर्म की एकरूपता बरतता है। उसका न कोई शत्रु है, न मित्र। वह भेद-भाव नहीं करता। न हर्ष से इतराता है, न शोक में विलबिलाता है। सुख-दुःख उसे नहीं व्यापते। उसकी अपनी कोई आकांक्षा नहीं होती। वह हर कार्य रामकाज समझकर भगवान् की प्रसन्नता के लिए करता है। उसकी काया सधी होती है, मन वश में रहता है। सत् उसका आचरण है, प्रेम उसका व्यवहार है। जिसके पास दो क्षण बैठते ही मन शान्त हो जाय, समझो कि वह सच्चा सन्त हैं।

नाम-जप का महत्व

भक्त की भावना ही नाम को चिन्मय कर देती है। इसलिए जिस भी नाम से भक्त के हृदय में भावना भावित हो सके, उसी का जप करना चाहिए। इसलिए संतों के यहाँ नाम-जप का बड़ा महत्त्व है।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने तो यहाँ तक कह दिया है-

भाव कुभाव अनख आलसहूँ, नाम जपे मंगल दिसि दसहूँ।।

नाम-जप करते-करते भगवदाकार वृत्ति हो जाती है क्योंकि जप में नामी का ध्यान रहता है। एक सबसे बड़ी बात नाम-जप में यह है कि इसमें विधि का बंधन नहीं है और आचार-विचार का कोई नियम नहीं हैं केवल भगवच्चिन्तन ही शर्त है। और उसी से धीरे-धीरे भगवान् का साक्षात्कार हो जाता है।संतों के यहाँ सुमिरन का बड़ा महत्त्व है परन्तु उनका 'सुमिरन' साधारण साधकों के सुमिरन जैसा नहीं होता-

सुमिरन ऐसा कीजिए दूजा लखै न कोय।
ओठ न फरकत देखिए प्रेम राखिये गोय।।

केवल रामचरण लव लागी

भगवत्प्राप्ति के लिए सतयुग में ध्यानयोग का, त्रेता में यज्ञादि का तथा द्वापर में परिचर्या का जो महत्त्व था, वही कलिकाल में नाम-गुण कीर्तन का है। भगवान् के किसी नाम का भी जप करना पर्याप्त है। केशव, नारायण, वरुण, इन्द्र, कुबेर, रुद्र, शंकर सभी परमात्मा के ही विभिन्न रूपों और क्रियाओं के द्योतक नाम हैं। एक ही विष्णु सर्वत्र है।

कहा गया है कि सभी तीर्थों के जल में स्नान कर लेना, सारे यज्ञादि करना, अथवा बलि आदि के समान दानी हो जाना भी उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि ब्रह्म-विचार में होना। विचार से भक्ति सुदृढ़ और पुष्ट होती है। भक्ति का अभिप्राय है, अपने सभी कर्मों को परमात्मा के चरणों में अर्पित कर देना और परम व्याकुल होकर उन्हें पुकारना।

गोस्वामी तुलसीदास ने रामायण में कहा है–

कलियुग जोग जज्ञ नहिं ज्ञाना।
एक आधार राम गुन गाना।।

कलियुग में चाहे जितने दोष हों किन्तु कीर्तन मात्र से भवसागर पार कर सकने की क्षमता जीव को प्रदान करने वाला यही है। ध्यान, यज्ञ, ज्ञान आदि के मार्ग कलियुगी मनुष्यों के लिए चाहे जितना दुःसाध्य हो किन्तु भजनभाव तो अत्यन्त सुलभ है। भगवान् का कीर्तन करना और उनके नाम का जप करना; बड़ा सहज और सीधा मार्ग है। केवल मन में उस नाम का भरोसा होना चाहिए। दृढ़ विश्वास और अविचल निष्ठा से किया गया जप कभी निष्फल नहीं होता। हृदय में सबके लिए प्रेम हो, जीवमात्र के लिए दया हो तो जप का फल शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। राम को केवल प्रेम चाहिए और कुछ नहीं। पूजा में चाहे लाखों लुटा दिया जाय किन्तु पूरी श्रद्धा के साथ लिया गया प्रभु का नाम ही अधिक महिमावान् सिद्ध होगा।

इसी प्रेम और विश्वास के कारण भक्त में एक-एक कर भगवान् के सभी गुण आते जाते हैं और वह राम से अधिक हो जाता है। भक्त भगवान् से बढ़कर होता है।

भक्ति का मार्ग उत्तम है, इसे अपनाना चाहिए। यह सहज पंथ है। श्रद्धा चाहिए, विश्वास चाहिए। अपने को प्रेम से भर लो और मुक्त हृदय प्रेम लुटाओ। प्राणिमात्र भगवान् का स्वरूप है। अतः सबसे प्रेम करो, सबकी सेवा करो, सबकी पूजा करो। यही भक्ति है।

भक्त जहाँ रहते हैं और जहाँ अपने पैर धोते हैं—वह स्थान महान् तीर्थ बन जाता है; परमपवित्र बन जाता है—

मद्भक्ताः यत्र तिष्ठन्ति पादाः प्रक्षालयन्ति च।
तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद् ध्रुवम्॥

अतः ऐसे भक्तों की संगति में बिताये कुछेक क्षण भी बड़े आनन्ददायक होते हैं। इस आनन्द का लाभ लो।

सोइ जानहि जेहि देहु जनाई

जब योगी, मुनि, तपस्वी, साधक सभी गीता, रामायण आदि का मन्थन करते-करते और वेद-वेदान्त का मन्थन-मनन करते-करते थक जाते हैं और उनकी समझ में कुछ आता नही और न तो कुछ ध्यान में ही दिखाई पड़ता है तो अन्त में कह बैठते हैं—'परमात्मा तू क्या है, यह तू ही जानता है। और जब ऐसी अवस्था आती है तभी परमात्मा की असीम कृपा होती है, जिससे वे साधक, योगी और मुनिगण परमात्मतत्त्व का दर्शन कर इस दुर्लभ मानव-जीवन को सफल बना पाते हैं।

गंगा तट पर एक सन्त रहते थे और वहीं पर भगवान् का एक मंदिर था। जिसमें वे नित्य भगवान् की पूजा-अर्चना करते थे और जब तक पूजा-अर्चना नहीं कर लें तब तक एक बूँद जल भी ग्रहण नहीं करते थे।

एक दिन नित्य की तरह सुबह से ही स्नान कर भगवान् का श्रृंगार करने लगे, लेकिन जब-जब श्रृंगार पूरा होने पर आता था, पूरा का पूरा बिखर जाता था। उन्हें ऐसा प्रतीत होता था कि भगवान् को सम्भवतः वह श्रृंगार पसन्द नहीं है और इसी कारण श्रृंगार बिखर गया है। महात्मा फिर दूसरे प्रकार से भगवान् का श्रृंगार करना प्रारम्भ करते और इस प्रकार सुबह से शाम तक भगवान् का अनेक प्रकार से श्रृंगार रचते रहे किन्तु ज्यों ही श्रृंगार पूरा होने को आता, वह पुनः बिखर जाता। उनकी भुजाएँ श्रृंगार करते-करते थक गयीं और उनकी बुद्धि भी जबाब दे गयी तो अंत में भगवान् से रूठ गये और यह कहते हुए चल पड़े

कि 'न जाने भगवान्, तुम्हें आज कौन-सा शृंगार पसन्द है, मेरी समझ में अब नहीं आता। अपना शृंगार तू अपने कर, मैं तो चला।'

महात्मा कुछ ही दूर तक पहुँचे थे कि उनका शिष्य दौड़ा हुआ आया और उनके चरण पकड़ कर प्रेमाश्रु बहाते हुए कहने लगा–'पुजारी बाबा, आप लौट चलें और देखें कि आपके रूठते ही स्वयं और स्वतः भगवान् ने किस प्रकार का अद्भुत् शृंगार कर रखा है। आज उस शृंगार में उनकी कितनी अलौकिक शोभा हो रही है। लगता है भगवान् आज अद्भुत् शृंगार कर साक्षात् मन्दिर में विराजमान है।'

यह सुनते ही महात्मा लौट आये। मन्दिर में प्रवेश करते ही उन्होंने देखा कि भगवान् अपना दिव्य शृंगार कर विराजमान है। भगवान् के परम प्रकाशमय दिव्य स्वरूप का दर्शन पाकर वे भगवान् के चरणों में नतमस्तक हो गये, नेत्रों से प्रेमाश्रु बहने लगे और इस प्रकार उस दिन उनकी साधना पूरी हो गयी। भगवान का दिव्य दर्शन प्राप्त हो गया और उन्होंने सब कुछ पा लिया।

भजन और उसकी उपयोगिता

जब तक भक्त भजन की उपयोगिता नहीं समझेगा, तब तक उसका मन भजन में नहीं लग सकता। संसार के विषयों में उसकी बड़ी तन्मयता रहती है और बिना किसी उपदेश और पथ-प्रदर्शन के मनुष्य विषयों की प्राप्ति के लिए उपाय करता रहता है। इसलिए सबसे पहली बात तो यह है कि व्यक्ति भजन की उपयोगिता और सार्थकता को समझ ले।

जब तक नित्यानित्य-वस्तु-विवेक नहीं होता, तब तक भजन की उपयोगिता समझ में नहीं आ सकती। आज की भौतिकवादी परिस्थितियों से मानव ऊबता जा रहा है और वह शान्ति के लिए किसी आश्रय की खोज में है। यह आश्रय भगवद् भजन के अतिरिक्त कोई दूसरा नहीं हो सकता।

यदि यह समझ लिया जाय कि वह भजनीय तत्त्व भगवान हैं जिसका व्यक्त स्वरूप यह विश्व है तो भजन में आस्था हो सकती हैं विश्व की सम्पूर्ण चेतना भगवान की ही चेतना है। भजन के द्वारा हमें अभेद बुद्धि से एकत्व सम्पादन करना पड़ता है।

शरीर को स्वस्थ और जीवन को सुखी बनाने के लिए कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। इसलिए भजन के निमित्त भी आचार आवश्यक है। आचारों

द्वारा शरीर-शुद्धि होती है और मन एकाग्र होता है। यथासम्भव साधना की प्रारम्भिक अवस्था में भजन करने का समय और स्थान अवश्य ही निश्चित होना चाहिए।

गुरु-तत्त्व

साधना में गुरु का निर्देश अच्छा होता है। गुरु में भगवद्बुद्धि होनी आवश्यक है। यह सम्पूर्ण समर्पण भाव से ही सम्भव है। गुरु-तत्त्व की कृपा से लोक और परलोक दोनों ही प्राप्त हो सकते हैं। योगी की सहजावस्था भी गुरु-कृपा साध्य है–

दुर्लभो विषयत्यागो दुर्लभं तत्वदर्शनम्।
दुर्लभो सहजावस्था सद्गुरोः करुणां विना॥

शास्त्रों में गुरु-तत्त्व को ईश्वर तत्त्व से भी बढ़कर बताया गया है परन्तु शिष्य के साधन और अधिकार के अनुसार ही गुरु-कृपा की उपलब्धि होती है। गुरु-तत्त्व और भगवत्-तत्त्व एक ही तत्त्व के दो रूप है। भगवत्-तत्त्व ऐश्वर्यमय है तथा गुरु-तत्त्व साधन मय। गुरुतत्त्व असीम दया और करुणा का सागर हैं गुरुकृपा अहैतुकी है, इसलिए उसकी शक्ति अचिन्त्य है। यह भगवान की ही गुरुभावमयी प्रेम-लीला है कि उनके नियति-क्रम का भी बोध हो जाता है। शास्त्रों के रूप में भी भागवती गुरु-शक्ति का ही प्राकट्य है।

सद्गुरु की प्राप्ति प्रयत्न साध्य नहीं है। जन्म-जन्म के संस्कारों से ही गुरु की प्राप्ति होती है।

गुरु-तत्त्व आकाश की भाँति सर्वत्र विद्यमान है क्योंकि परम-तत्त्व और गुरु-तत्त्व में कोई भेद नहीं है। गुरु भगवत्स्वरूप है। उनके दर्शन, स्पर्श अथवा शब्द मात्र से ही तत्त्वज्ञान हो सकता है।

गुरु-तत्त्व की सम्पूर्ण शक्ति गुरु-मंत्र में निहित है। गुरु-प्रदत्त बीज-मंत्र शिष्य के हृदय में अनन्त प्रकाश का प्रज्ज्वलन कर देता है, परन्तु यह शिष्य की योग्यता पर ही निर्भर है। यों तो सभी मंत्र प्रणव के स्वरूप हैं परन्तु गुरु-मंत्र एक अलौकिक शक्ति से परिपूर्ण होता है, जिससे विशुद्ध प्रणवरूपा ध्वनि निर्गत होती है और अधिकारी को चैतन्य-स्वरूप में प्रतिष्ठित कर देती है।

वास्तव में यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शब्द का ही विलास है गुरु-मंत्र शब्दों का स्वरूप शुद्ध और सात्विक होता है जो चिन्मय है। उससे मलिन शब्दविकार स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं।

प्रेरक प्रसङ्ग

सन्त की सहनशीलता

भागीरथी के किनारे एक सन्त अपनी पर्णकुटी में रहते थे। उनसे थोड़ी ही दूर पर एक दुष्ट साधु की कुटिया भी थी। वह प्रतिदिन प्रातः जब महात्मा प्रभु-चिन्तन में मग्न रहते तो उनके पास आकर अकारण गालियाँ बकने लगता। वे कोई प्रत्युत्तर न दे, अपने ध्यान में लगे रहते। उनके शिष्य से यह असह्य हो गया। वह महात्मा से बोले गुरुदेव! आप आदेश दें तो मैं उस दुष्ट को सीधा कर दूँ। महात्मा ने कहा-नहीं, वह स्वयं ही सुधर जायेगा।

एक दिन किसी भक्त ने फलों से भरी एक बड़ी टोकरी महात्मा के पास भेजी। उन्होंने अपने हाथों अच्छे-अच्छे फल चुने और स्वच्छ कपड़े में बाँध कर अपने शिष्य द्वारा उस दुष्ट साधु के पास उपहार भेजा। महात्मा ने शिष्य से कहा-यह फल उस कृपालु साधु को दे आओ, जो प्रतिदिन आकर मुझ पर अमृतवाणी की वर्षा करता है। शिष्य ने कहा-महाराज जी, वह तो आपको गन्दी-गन्दी गालियाँ दिया करता है महात्मा ने कहा-तुम समझते नहीं, वह उसी रूप में मुझ पर कृपा करता है।

शिष्य फल की पोटली लेकर साधु के पास पहुँचा और महात्मा द्वारा फल भेजने की बात बतायी। साधु बोला-राम राम! अरे, प्रातःकाल तुमने किसका नाम सुनाया। न जाने आज भोजन भी मिलेगा या नहीं। फल उसने मुझे नहीं भेजा है, किसी दूसरे के लिए भेजा होगा, मैं तो रोज उसे गालियाँ ही दिया करता हूँ।

शिष्य ने लौटकर महात्मा से दुष्ट साधु की बात बतायी। महात्मा बोले-तू फिर उस सन्त के पास जा। कहना, आपके वास्ते ही उन्होंने ये फल भेजे हैं। आप प्रतिदिन जो उनपर अमृत वर्षा करते हैं, उसमें पर्याप्त शक्ति लगती है। ये फल उन्होंने इसलिए भेजे हैं कि आप इनका सेवन कर अमृतवर्षा यथावत् करते रहें।

शिष्य ने साधु के पास जाकर गुरु की बात दुहराई। साधु सुनकर

हक्का-बक्का रह गया। वह अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करता हुआ, साश्रुनयन महात्मा के पास पहुँचा और उनके चरणों में गिरकर बोला—महाराज, मुझे क्षमा करें। मुझसे अपराध हुआ। आपने साधुता का यही मार्ग मुझे बोध कराया।

सन्त स्वभाव से ही परोपकारी होते हैं जीवमात्र पर वे दया का भाव रखते हैं। वे तो—**'निज प्रभुमय देखहिं केहिसन करहिं विरोध'** की स्थिति को प्राप्त होते हैं।

किसी भी प्राणी के प्रति कभी भी किसी प्रकार से मन में द्वेष-भाव नहीं रखना चाहिए। द्वेष-भाव रखनेवालों का अमंगल ही होता है। जो मनुष्य प्रतिकूल बातें भी सहजता से सहन कर लेता है, उसमें भगवान् के प्रकट होने का लक्षण जानना चाहिए।

अमर फल

एक ब्राह्मण ने अपने बालक पुत्र को कुछ पैसे देकर बाजार भेजते हुए कहा-बेटा, कुछ फल खरीद कर ले आओ। बच्चा फल खरीदने बाजार चला तो रास्ते में उसे गरीबों की एक टोली मिली। उसने देखा कि उनमें कुछ लोग ऐसे थे जिनके तन पर कपड़े भी नहीं थे और भूख के मारे उनका पेट-पीठ एक हो गया था। वह देख संस्कारी बच्चे को दया आ गयी और उसने अपने सभी पैसे उन गरीबों में बाँट दिये और खाली हाथ घर लौटा। पिता ने पूछा—बेटा, फल नहीं लाये? बालक ने उत्तर दिया—पिताजी, आपके लिए मैं अमर फल लाया हूँ। ब्राह्मण भक्त ने कहा—अमर फल कैसा होता है बेटा? पुत्र ने कहा—पिताजी, मैने रास्ते में देखा कि कुछ गरीबों के पास तन ढँकने को वस्त्र नहीं थे तथा वे भूख से छटपटा रहे थे। सभी पैसे मैंने उन लोगों में बाँट दिये तथा खाली हाथ घर लौट आया। हम और आप फल खाते तो दो-चार क्षणों के लिए हमारे मुँह मीठे होते परन्तु इसे बाँटने का फल तो अमर है न पिताजी! बच्चे की इस बात से ब्राह्मण भक्त प्रसन्नता से गद्गद् हो गये, उनकी आँखों में श्रद्धाश्रु के बिन्दु टपक पड़े।

यही बालक आगे चलकर संत रंगदास के नाम से विख्यात हुआ।

सर्वव्यापक परमात्मा

दक्षिण भारत में नामदेव नामक एक महान संत थे। उनके मन में अभिमान

हो आया कि भगवान बिठोबा मुझसे बातें करते हैं। मैं कितना भाग्यशाली हूँ। ऐसा सौभाग्य भला किसको प्राप्त होगा? एक बार संत-मण्डली उनके गाँव में एकत्रित हुई तथा खूब धूमधाम के साथ सब ने हरिकीर्तन किया। पंगत के पश्चात् जब सभा बैठी तो मुक्ताबाई ने गोरा कुम्हार से कहा-देखो, तुम उपस्थित संतों की परीक्षा लो। इनमें पक्का कौन है, कच्चा कौन है-मस्तक पर ठोकरें मार-मार कर सब की जाँच करो तथा निर्णय दो।

गोरा कुम्हार ने ठोकरें मार-मार कर परीक्षा लेनी शुरू की। इससे किसी संत को हिचक नहीं हुई नामदेव महाराज को यह बुरा लगा, उनको अभिमान हुआ कि नीच कुम्हार द्वारा घड़े की परीक्षा की रीति से मेरी परीक्षा होगी!

गोरा कुम्हार ने नामदेव से कहा-महाराज, सबका माथा पक्का है, एक आपका ही कच्चा है। आपको सच्चे गुरु की आवश्यकता है। आपको सर्वव्यापक ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान अभी नहीं हुआ है।

नामदेव को आत्मग्लानि हुई। उन्होंने रात्रि में प्रभुसेवा के समय अपने इष्ट बिठोबा से फरियाद की। भगवान् बिठोबा ने कहा-गोरा कुम्हार का कहना सच है नामदेव! तुम्हें अभी सर्वव्यापक ब्रह्म का पूर्णज्ञान वास्तव में नहीं है, तुम विसोबा खेचर नाम के मेरे प्रिय भक्त के पास जाओ, वही तुम्हें पूर्णज्ञान देगा।

अपने प्रभु की बात सुनकर नामदेव विसोबा खेचर के पास पहुँचें उस समय विसोबा को भगवत्प्रेरणा से इस बात की जानकारी हो चुकी थी कि नामदेव आ रहे हैं। उन्होंने जानबूझकर उनके ज्ञानचक्षु के उन्मीलन के लिए ऐसा किया था।

नामदेव यह दृश्य देख विसोबा पर मन ही मन कुपित हुए और उनकी भर्त्सना करते हुए कहा-आप कैसे उजड्ड हैं महाराज आपको तनिक भी समझ नहीं है। आप शिव के मस्तक पर पैर रखकर सो रहे हैं, भला यह कौन-सी भक्ति है?

विसोबा ने कहा-आप ही मेरा पैर शिवलिंग से हटाकर किसी ऐसे स्थान पर रख दें, जहाँ शिव न हों। नामदेव विसोबा का पैर जिधर हटाते वहीं शिवलिंग दिखाई पड़ने लगे इस प्रकार सारा का सारा मन्दिर शिवलिंग से भर गया। नामदेव यह देख विस्मय में पड़ गये। तब विसोबा ने कहा-गोरा कुम्हार ने ठीक ही कहा

था, आपकी हाँड़ी कच्ची है, जब साधक पर भक्ति-देवी की कृपा होती है तभी उसे सर्वत्र परमात्मा का दर्शन होता है।

करुणामय परमात्मा जड़-चेतन सब में व्याप्त है वे केवल मन्दिरों और तीर्थों में नहीं, चराचर में है। वस्तुतः यह संसार परमात्मा का ही स्वरूप है भगवान ने गीता में कहा है–

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।। (7। 19)

अर्थात् बहुत जन्मों के अन्त में तत्त्वज्ञान को प्राप्त जो ज्ञानी पुरुष सब कुछ वासुदेव ही हैं, इस प्रकार मुझे भजता है, वह अत्यन्त दुर्लभ है।

सबके दाता राम

एक बार शिवाजी के राज्य में एक किले का निर्माण हो रहा था। बहुत से मजदूर कार्य कर रहे थे उन लोगों को देखकर शिवाजी के मन में अहंकार हो आया कि मेरे द्वारा इन सभी का भरण-पोषण हो रहा है।

शिवाजी के सद्गुरु समर्थ रामदास जी महाराज बहुत बड़े योगी थे। शिवाजी के अहंकार को वे जान गये और भ्रमण-क्रम में शिवाजी के पास पहुँचे। शिवाजी जी ने चरण-वन्दना की और नवनिर्मित किले को अपने गुरुदेव को दिखाने लगे। समर्थ गुरुरामदास ने कहा–

शिवा! तू सचमुच पुण्यात्मा है। अगर तु न होता तो इन सब का भरण-पोषण कैसे होता?

रामदास की बात से शिवाजी के अहंकार को पुष्टि मिली। उन्होंने कहा-सब आपकी कृपा है गुरुदेव!

समर्थ रामदास ने एक शिला-खंड की ओर संकेत करते हुए शिवाजी से कहा-शिवा, तू जरा इसे तुड़वा तो दे। शिवाजी ने तुरन्त आदेश का पालन किया। पत्थर को तुड़वाया तो उसके बीच में एक मेढक निकला, जो अन्दर घोंघड़ में बैठा था और पानी से लथ-पथ था। उसे देख कर समर्थ रामदास ने कहा–शिवा, कल्याण हो, क्या तूने पत्थर के अन्दर रहने वाले मेढक के भरण-पोषण का भी इन्तजाम कर रखा है!

शिवाजी का अहंकार चूर हो गया। सद्गुरु के चरणों में गिर कर उन्होंने क्षमा याचना की।

सबका पालनकर्त्ता एकमात्र परमात्मा है। वह हमारे पल-पल का ध्यान रखता है। हमें सभी चिन्ताओं का परित्याग कर उसकी शरण ग्रहण करनी चाहिए। कबीरदास ने कहा है–

पौ फाटा पगुरा हुआ जागा जीवा जून।
सब काहू को देत है, चोंच समाना चून॥
मुरदा हूँ को देत हैं, कफ्फन लकड़ी आग।
जिन्दा नर चिन्ता करे, तिसका बड़ा अभाग॥

माँ गायत्री का साक्षात्कार

स्वामी विद्यारण्य मुनि ने गायत्री के 24 करोड़ पुरश्चरण किये पर उन्हें देवी का दर्शन नहीं हो सका। अंत में उन्होंने उदास होकर सन्यास ग्रहण कर लिया। तब उन्हें माता गायत्री के दर्शन हुए। गायत्री माता ने कहा-भक्त! मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ। तू जो चाहे माँग ले।

विद्यारण्य मुनि ने कहा-माता जी, जब मैनें घोर साधना द्वारा आपका साक्षात्कार करना चाहा, तब तो आपने दर्शन ही नहीं दिया। अब आप ने स्वयं मुझ पर कृपा की है, इसका क्या कारण है?

गायत्री माता ने कहा-भक्त! तू पीछे मुड़कर तो देख कि क्या हो रहा है।

विद्यारण्य स्वामी ने पीछे की ओर देखा तो चौबीस पर्वत जलते दिखाई पड़े।

उन्होंने गायत्री माँ से पूछा-माँ! यह क्या हो रहा है?

माता ने कहा-ये सारे तेरे पूर्वजन्म के पाप हैं जो तरी तपश्चर्या के फलस्वरूप भस्मीभूत हो रहे हैं। जब चौबीस पर्वतों के समान तेरे घोर पाप जल गये तो बाधा हट गयी और मैं सम्मुख आ गयी। देख भक्त, जब तक पापों का क्षय नहीं होता, जीव पूर्णतः शुद्ध नहीं हो पाता और तब तक मेरे दर्शन भी दुर्लभ है।

विद्यारण्य स्वामी ने कहा-माँ! अब मैं शुद्ध हुआ, मुझे कुछ माँगना नहीं, केवल तुम्हारी भक्ति चाहिए।

गायत्री माँ अमोघ आशीर्वाद देकर विदा हुई।

साधना करने पर सिद्धि नहीं मिलती तो समझो कि अभी पूर्वजन्म के पाप शेष है। साधना के प्रति मन में उपेक्षाभाव मत आने दो। सच्ची निष्ठा से भगवद्स्मरण करते रहो, प्रेम से भगवन्नाम का जप करो। जप से पूर्वकृत् पापों का नाश होता है। अनेक जन्मों से यह जीव पाप करता आया है। पाप करने का स्वभाव, जप एवं भगवत्कृपा से दूर होता है। जब भी ऐसी अनुभूति हो कि मन पाप करने जा रहा है, तो जोर-जोर से भगवान् के नाम का कीर्तन करना शुरू करो।

दूषित अन्न का कुप्रभाव

महाभारत में कथा आती है कि जब भीष्म पितामह शरशय्या पर पड़े थे, तब भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेरणा से द्रौपदी समेत पाँचों पाण्डव उनके समीप पहुँचे और कुछ कल्याणकारी उपदेश करने की प्रार्थना करने लगे। पितामह तदनुसार जब धर्मोपदेश करने लगे तो उसे सुनकर द्रौपदी को हँसी आ गयी। शर-शय्या पर पड़े-पड़े भीष्म ने द्रौपदी से पूछा-बेटी! तुम हँसी क्यों?

द्रौपदी ने विनम्र स्वर से कहा-अपराध क्षमा करें दादाजी। मुझे कुतूहल हो आया कि इस समय आप जो ज्ञान-चर्चा कर रहे हैं, यह ज्ञान जब मैं कौरवों की भरी सभा में नग्न की जा रही थी, कहाँ था?

कुछ क्षण मौन रहकर भीष्म ने कहा-बेटी, तेराकथन सत्य है। वास्तव मे उस समय दुराचारी दुर्योधन के अन्न से पालित मेरे शरीर में दूषित अन्न का रक्त संचारित था। जिससे मेरा विवेक सुप्त हो गया था। विरोध करने की प्रबल इच्छा होने पर भी मुझे मौन रह जाना पड़ा। अब वह दूषित रक्त अर्जुन के तीक्ष्ण बाणों से स्त्रवित हो चुका है, इसी से अब मेरी बुद्धि निर्मल हो गयी है। मैं धर्म-चर्चा कर रहा हूँ। बेटी, शास्त्रकारों ने कहा है-जैसा खाये अन्न वैसा वने मन।

अन्न-दोष से सर्वदा बचने का प्रयास करना चाहिए। शुद्ध कमाई से अर्जित अन्न को भगवान् को समर्पित कर, प्रसाद रूप में ग्रहण करो। 'त्वदीयं वस्तु

गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' का भाव होना चाहिए। भोजन को भगवत्प्रसाद जान कर ग्रहण करने से बुद्धि सात्त्विक होती है और मन निर्मल बनता है।

निन्दक नियरे राखिये

सतयुग की बात है। एक थे महाराज धर्मव्रत। वे बड़े ही पुण्यात्मा थे। हर काम विवेक से और सोच-समझ कर धर्मसंगत जानकर ही करते थे। एक बार वे जंगल से होकर गुजर रहे थे। रास्ते में तप में लीन एक ऋषि के उत्तर नहीं देने से धर्मव्रत को क्रोध हो आया और उन्होंने ऋषि के माथे पर घोड़े की लीद डाल दी।

राजधानी लौटकर आने के कुछ दिनों के बाद देवदूतों ने आकर उन्हें बताया–

स्वर्ग में आपके लिए जो स्थान सुरक्षित था, वह लीद से भर गया है।

लीद से तो बड़ी दुर्गन्ध निकलेगी। उसे कैसे हटाया जा सकेगा? धर्मव्रत ने विनम्र भाव से पूछा।

राजन्! यदि लोग आपकी निन्दा करें तो लीद हटेगी, क्योंकि निन्दक निन्दित व्यक्ति के दोष का छठाँ भाग ले लेता है।

उपाय बताकर देवदूत चले गये। राजा ने धर्म के काम बन्द कर दिये, जिससे नाराज होकर लोग निन्दा करें। प्रजाजनों में राजा की लोकप्रियता घट गयी और लोग उनकी निन्दा करने लगे। स्वर्गस्थित उनके कक्ष में लीद साफ होने लगी। हर स्थान की गन्दगी धीरे-धीरे साफ हुई परन्तु एक कोने में लीद रह गयी, क्योंकि उनके राज्य में एक अतिविचारवान् लुहार था, जिसने निन्दा नहीं करने का व्रत ले रखा था।

केवल स्वार्थ-बुद्धि से की गयी निन्दा में पाप है, सद्भाव से की हुई आलोचना में दोष नहीं। गोस्वामी जी ने इसीलिए कहा है–

'निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय।'

शब्दों के पीछे नहीं पड़ना चाहिए, उनमें अपमान मानकर अपना चित्त चंचल नहीं करना चाहिए। शब्दों के अर्थ जैसा चाहो, निकाल लो।

जाति न पूछो साधु की

चित्तौड़ की महारानी सन्त रैदास की शिष्या बन गयीं। इसमें ब्राह्मणों को बड़ा क्षोभ हुआ। भक्त रैदास हरिजन थे। महारानी को किसी ब्राह्मण गुरु से दीक्षा लेनी चाहिए। चारों तरफ से प्रबल विरोध का स्वर उठ खड़ा हुआ। इससे राजा ने विचार किया कि क्यों नहीं इस बात की परीक्षा ही कर ली जाय कि कौन श्रेष्ठ भक्त है, जिसका शिष्यत्व स्वीकार किया जाय। निश्चित हुआ कि जिस भक्त की पूजा भगवान् की मूर्ति निकट आ जायेगी, उसे ही मान्यता मिलेगी।

पहला अवसर ब्राह्मणों को ही मिला। पूजा-अर्चना होने लगी। स्तुति के श्लोक पढ़े जाने लगे। समवेत स्वर सर्वत्र गूँज गया किन्तु कोई फल नहीं हुआ। मूर्ति टस-से-मस नहीं हुई। अन्त में भक्त रैदास की बारी आयी। वे भाव-विह्वल हो गये। उनकी आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। वे करुण स्वर में गाने लगे-हे प्रभो! या तो अपना पतितपावन नाम चरितार्थ करो या मुझे ही अपने पास बुला लो। उनकी भावनिष्ठा एवम् भक्ति का आवेग इतना प्रबल था कि भगवान् की मूर्ति स्वतः उनकी छाती से सट गयी। भक्त रैदास परीक्षा में सफल हुए। वे सर्वश्रेष्ठ भक्त माने गये।

भक्ति में भाव असली चीज है। विह्वल होकर, शरणापन्न होकर जो प्रभु को पुकारेगा, उसे उनके दर्शन होंगे। भक्ति जाति सापेक्ष नहीं है। **'जाति न पूछो साधु की।'** भक्त जाति से परे हैं, वर्ग से परे हैं, रंग से परे हैं। भक्त को भगवान् ने अपने से भी श्रेष्ठ माना है। 'मद्भक्ता यान्ति मामपि' जब भक्त और भगवान् एक हो गये तो फिर भक्त की श्रेष्ठता की तुलना किससे की जा सकती है?

हिन्दू समाज में ब्राह्मण का बड़ा महत्त्व है, किन्तु भक्ति में कोई जाति-वर्ण नहीं। भक्ति से माया डरती है। ईश्वर से और जाति से कोई सम्बन्ध नहीं। जाति और कुलीनता के प्रभाव में जो डूबा रहता है, उसका उद्धार नहीं होता।

भगवान को भक्त की चिन्ता

एक बार श्री रंगनाथ जी के मन्दिर के एक पुजारी कावेरी में स्नान कर रहे थे। उसी समय एक चाण्डाल वहाँ स्नान करने को उतर आया। भगवान् के प्रेम-रस में वह विह्वल था। प्रभु-प्रेम में विभोर होने से उसकी दृष्टि पुजारी पर नहीं पड़ी। पुजारी श्वपच को देखकर आग-बबूला हो गये। उसकी ढिठाई को

देखकर क्रोध की सीमा नहीं रही। क्रुद्ध पुजारी ने एक पत्थर उठाकर श्वपच पर फेंका। पत्थर उसके ललाट पर लगा। ललाट से रक्त की धारा बहने लगी। चोट के कारण वह श्वपच कुछ क्षणों के लिए मूर्च्छित-सा हो गया। कुछ क्षणों के बाद वह सम्भल गया और विनयभरे स्वर में अपने अपराध के लिए पुजारी से क्षमा माँगने लगा।

मेरी भूल के कारण आपको क्रोध करना पड़ा। इतने समय तक भगवान् की पूजा-अर्चना में विघ्न हो गया। पूजा में विलम्ब करवाने के कारण आपने मुझे उचित ही दंडित दिया। आप कृपालु हैं। मुझे क्षमा करें। श्वपच के बार-बार कहने और गिड़गिड़ाने पर पुजारी का क्रोध शान्त हुआ। पुजारी पुनः स्नान करने में लग गये।

स्नानादि से निवृत्त होकर पुजारी शीघ्र ही मन्दिर लौट आये। पूजा की सामग्री लेकर जब वे मन्दिर के भीतर श्रीनाथ जी के विग्रह के निकट गये तो उन पर दृष्टि पड़ते ही विस्मित हो गये। विग्रह के ललाट से रक्त की धारा प्रवाहित हो रही थी। पूजा-सामग्री रखकर वे व्यग्रतापूर्वक उस रक्त-स्राव को रोकने की चेष्टा करने लगे। काफी प्रयास के पश्चात् भी जब लहू का बहना नहीं थमा तो पुजारी जी घबड़ाये।

व्यग्र पुजारी की घबड़ाहट को देखकर उसी समय श्रीरंगनाथ जी का आदेश हुआ तुमने मेरे भक्त को पत्थर मारा। उसे भक्त नहीं श्वपच समझा। यह नहीं सोचा कि मेरा प्रेम ही उसे पागल बनाये हुए है।

अपराध हो गया प्रभु, क्षमा करें। रक्त-प्रवाह का शमन करें। मुझ पर कृपा करे।

उस श्वपच भक्त को कन्धे पर बिठाकर जब तक तुम मन्दिर की परिक्रमा नहीं करोगे, रक्त बहना बंद नहीं होगा।

अन्त में पुजारी ने उसे कन्धे पर बिठाकर मन्दिर की परिक्रमा की तब देखा कि सचमुच श्रीरंगनाथ जी के ललाट से रक्त बहना बन्द हो गया।

सब तो स्त्री ही है

दक्षिण भारत में महेन्द्र प्रताप सिंह नामक एक राजा था। उसको कोई

सन्तान नहीं थी। चौथेपन में सन्त-कृपा से उसे एक कन्या की प्राप्ति हुई परन्तु उसमें एक विचित्रता थी। वह होश सम्भालने के बाद भी नंगी ही रहने लगी। सयानी होने के बावजूद, लाख प्रयत्न करने पर भी वह वस्त्र पहनने का नाम तक नहीं लेती थी। दिन भर वह भगवान् की पूजा बड़े प्रेम से करती थी और सदैव श्रीनारायण के ध्यान में मग्न रहा करती।

एक बार एक महात्मा राज दरबार में आये। राजा ने उनका यथोचित सत्कार किया और उनसे प्रार्थना की-महाराजजी! मेरी एक कन्या है जो न जाने क्यों नंगी रहा करती है, वस्त्र पहनना चाहती ही नहीं। अब उसकी शादी कैसे होगी? आप कृपा करे तो उसकी बुद्धि सुधरे।

महात्मा ने कहा-तु अपनी कन्या को मेरे पास बुलाओ।

राजा ने कन्या से महात्मा के दर्शनार्थ चलने को कहा। कन्या सहर्ष तैयार हो गयी और अपनी माँ से पहनने के लिए वस्त्र माँगे। दोनों दम्पति की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। रानी बड़ी तत्परता से उसे नये-नये वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर महात्मा के पास ले आयी। कन्या महात्मा के चरणों में दण्डवत् निवेदन कर एक ओर खड़ी हो गयी।

महात्मा ने कहा-बेटी! तूने आज तक कभी वस्त्र नहीं पहने। किसी से लज्जा अनुभव तुझे नहीं हुई। किन्तु मेरे पास वस्त्र पहन कर आयी, इसका कारण बतलाओ।

कन्या बोली-महाराज जी! यहाँ तो सबके सब स्त्री ही हैं, फिर उनसे पर्दा करने की क्या आवश्यकता है?

कन्या के प्रत्युत्तर से सभी लोग विस्मित हो गये। महात्मा कन्या के कथन का रहस्य जान गये। उन्होंने कहा-देखो राजन्, तुम्हारी कन्या भावनिष्ठ और संस्कार-सम्पन्न है, इसके उत्तर का रहस्य तुम लोग नहीं जान पाये। वास्तव में तुम सब के सब स्त्री ही हो। पुरुष तो वही है जिसने अपनी इन्द्रियों पर साधना द्वारा विजय प्राप्त कर ली है। वैराग्यवान् को ही सच्चे पुरुष की संज्ञा शास्त्रकारों ने दी है। तुम इसके लिए अलग महल बनवा दो। उसमें यह प्रभु-भजन करती हुई जीवनयापन करेगी। इसके तो प्रियतम श्रीनारायण है।

संत श्यामदास के इष्ट बालकृष्ण

वृन्दावन में संत श्यामदासजी रहते थे। वे बाल-कृष्ण के उपासक थे। उनकी भावना थी कि वे नन्द हैं और बालकृष्ण उनके पुत्र। जब वे यमुनाजी स्नान करने जाते तो बालकृष्ण को साथ ले जाते, भोजन करने बैठते तो ऐसी भावना रखते कि कन्हैया मेरी गोद में बैठकर खा रहा है। कभी-कभी प्रेम विभोर हो वात्सल्यभाव के कारण वे बिगड़ पड़ते और कहते-देख, तु बड़ा हठ करता है, जल्दी-जल्दी भोजन नहीं करता, बराबर खाली पेट ही उठ जाता है। अब तुझे चाँटें लगेंगे। इस प्रकार वे अपने इष्ट बालकृष्ण के ध्यान में सतत तन्मय रहा करते थे। अहर्निश उनकी मानसिक सेवा चलती रहती थी।

महात्मा के मन में एक बार गंगा स्नान करने की अभिलाषा जाग्रत हुई। वे शिवपुरी काशी जाने को तैयार हुए, परन्तु उन्हें लगा कि कन्हैया कह रहा है—बाबा, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। अभी छोटा हूँ, मुझे अकेले छोड़कर कहाँ जाओगे? अस्तु, वात्सल्यातिरेक के कारण उन्होंने गंगा स्नान की योजना स्थगित कर दी। सोचा, मेरा प्यारा कन्हैया अभी बच्चा है, इसे छोड़कर कहीं जाना अच्छा नहीं है। इस प्रकार अपने इष्ट बालकृष्ण की सेवा करते-करते महात्मा, वृद्धावस्था को प्राप्त हो गये परन्तु उनका कृष्ण तब भी बच्चा ही रहा। वे अपने इष्ट की बाल-भावना से ही सेवा-अर्चा करते रहे और एक दिन इसी प्रकार प्रभुचिन्तन करते-करते उन्होंने पाँचभौतिक शरीर का परित्याग कर दिया।

संत-मंडली भगवन्नाम संकीर्तन करती हुई दाह-संस्कार हेतु उनके शव को यमुना मैया के किनारे ले आयी। सभी चिता रचाने की तैयारी में लगे ही थे कि एक सात वर्ष का दिव्यतेजो-मंडित बालक, माथे पर गंगाजल का कलश लिए पहुँचा और सभी को सम्बोधित करते हुए बोला-ये मेरे पूज्य पिता है, मैं इनका मानस-पुत्र हूँ। इनकी तीव्र इच्छा थी कि गंगास्नान को जायें, परन्तु मेरे ही कारण इनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी। आज मैं गंगाजल लाया हूँ, इन्हें स्नान कराऊँगा। पिता की अन्तिम इच्छा को पूर्ण करना पुत्र का कर्त्तव्य होता है। यह कहकर उस तेजोमय बालक ने शव को गंगाजल से स्नान कराया, माथे पर तिलक-छाप लगाया, पुष्प की सुन्दर माला पहनाई, प्रदक्षिणा की तथा पाँव पर माथा टेक, अग्नि-संस्कार सम्पन्न किया। उसके बाद ही वह दिव्य तेजस्वी

बालक कहीं अंतर्धान हो गया। तब सभी उपस्थित संतों को बोध हुआ कि महात्मा को तो कोई संतान ही नहीं थी, वे तो बालकृष्ण को अपना पुत्र मानते थे। भगवान् ने ही आकर इनका दाह-संस्कार किया है।

जिस भाव से भक्त ईश्वर का भजन करता है, वे उसे उसी भाव से अपनाते हैं।

भावाञ्जलि खण्ड

भावाञ्जलियाँ

शताब्दियों बाद कभी इस तरह के सन्त हुआ करते हैं जो ईश्वरीय भावना से ओतप्रोत रहते हैं, कुछ सन्त तो स्वयं ईश्वर भक्त होते हैं जो भक्ति, पूजन, भजन, जप आदि किया करते हैं उन्हें भागवत कहते हैं किन्तु श्री पंजाबी भगवान महाभागवत थे जिन्होंने लाखों-लाखों लोगों को ईश्वर की ओर उन्मुख कराया है। जिनको छूने से, जिनके पास बैठने से, जिनकी सेवा करने से संसार के प्रति मोह कम होता है, वे ऐसे महात्मा थे जिनके किसी भी प्रकार सम्पर्क में आने से मानव ईश्वरीय उत्कर्ष को प्राप्त कर लेता है

–जगद्गुरु रामानन्दाचार्य स्वामिरामनरेशाचार्य।
श्री मठ, पंचगंगा, काशी

2. इस शताब्दी की दुर्दान्त घटना, उनके व्यक्तित्व जैसा "न भूतो न भविष्यति। **महंत श्री माधवदास–श्रीनगर।**

3. समाज सेवा के शिखर पुरुष, अक्षयकीर्ति अर्जित करने वाले अजातशत्रु अपने महान कार्यों से अमर हो गये।

–महंत श्री जगन्नाथदास, सूरत

4. 07 मार्च 2006 का वह क्षण प्रमाण है उन धर्मात्मा महापुरुष की शिखरवासिनी कीर्ति का, उनके मृदुल व्यवहार, उनकी प्रसन्न मानसिकता तथा उनकें सतत साधना एवं कर्मप्रवण जीवन का। वह दान का शिखर कलश, दयालुता का सुमेरु तथा उदारता का समुद्र सबके हृदयों पर अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व की अमिटछाप छोड़कर भगवान की नित्यलीला में लीन हो गये–न भरने वाली रिक्तता पूरे समाज को देकर। धन्य है अमर आत्मा, धन्य है उनका अमरकृतित्व।

–महंत श्री कौशल किशोरदास, अयोध्या

5. मृत्युपाश में बाँध कर भले ले गया काल, कालजयी तुम अमर हो धन-धन श्री महाराज।

—वर्फानीदादा, अमरकण्टक, म.प्र.

6. धरती के समान सहनशील, सागर की तरह गम्भीर, निर्भर की तरह मृदु मुस्कान विखेरने वाले सन्त जिनकी एक दृष्टि पहाड़ के समान कठिनाइयों को भी तिरोहित करने के लिए पर्याप्त थी, हमारे सामने नहीं रहे, विश्वास ही नहीं होता।

—महामण्डलेश्वर अभिरामदासजी, ऋषिकेश

7. क्या हमने 06 मार्च से अब-तक जो जिया है, सहा है, वह सब सत्य है? यदि सत्य है तो निःसन्देह सच बहुत कड़वा और कल्पना से परे होता है। एक क्षण सिर्फ एक क्षण ने हमारे जीवन की धारा ही बदलकर रख दी, वह धुरी जिनके सहारे हम अपने को सबसे सुखी मानते थे वह अपनी जगह से हट गयी और हम सब एक ही क्षण में आधारहीन हो गये।

—राजकुमार दास, वाराणसी

8. शायद जीवन का कोई भी क्षण ऐसा नहीं रहेगा जब उनकी अनुपस्थिति हमें नहीं सताएगी। हम उन्हें कैसे भूलें जिनकी हर पाँच मिनट बाद याद आ जाती है जिनके होने पर आश्रम हमेशा भरा भरा रहता था, जिनकी आवाज हमारे नामों को पुकारा करती थी, कहाँ गयी वह अधिकार पूर्ण पुकार?

—रामलोचन दास, वाराणसी

9. हमारे प्रेरणा स्रोत थे वे। अब हम किसी भी ऊँचाई को छू लें क्या फर्क पड़ता है? किसे दिखाएगें? कौन हमारी पीठ थपथपाएगा?

—महानन्द झा—नई दिल्ली

10. पूज्य महाराज जी पूरे मानव समाज के एक उज्ज्वल नक्षत्र थे।

—रामनन्द दास, अयोध्या

11. वे कई कल्याणकारी सुप्रवृत्तियों के मुख्य अवलम्ब व प्रेरणा श्रोत थे, उनकी साधना एवं सेवा को सदैव स्मरण किया जाएगा।

—अमिताभ बच्चन, मुम्बई

12. यदि धार्मिक संस्थाओं को पतिव्रता स्त्री की संज्ञा दी जा सके तो पूज्य महाराज जी के महाप्रयाण से वे सब आज विधवा हो गई।

—रमेशभाई ओझा, पोरबन्दर

13. आश्रम में कोई भी धार्मिक आयोजन जब-जब होते रहेंगे श्री महाराज जी की याद हमें तरोताजा करती रहेगी और उनकी कमी हमें हमेशा अखरती रहेगी जो कि अपूरणीय है।

—दीपक गुप्ता—वाराणसी

14. पूज्य महाराज जी के लिए शब्दों में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने से अतिरिक्त है क्या?

—नारायण दत्त तिवारी—मुख्यमंत्री, उत्तराञ्चल

15. ऐसे संयमी, भगवान् को खोना जीवन की अमूल्य निधि से वंचित होना है।

—सोहन लाल मित्तल—लुधियाना

16. सेवा, निष्ठा, समर्पणभाव और धैर्य की प्रतिमूर्ति श्री महाराज जी के महाप्रयाण से हम सभी के लिए अपूरणीय क्षति हुई है। उनके आदर्शों पर चलना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाञ्जलि है।

—श्री राघवाचार्य जी, अग्रदेवपीठाधीश्वर, राजस्थान

17. इन महापुरुष के संसर्ग में आकर न जाने कितनो को आश्रय, समुचित दिशा, मार्गदर्शन एवं जीवन दर्शन मिला।

—महंत श्री माधवदास, मुम्बई

18. स्नेह, गम्भीरता और मुस्कराहट का विग्रह चला गया।

—श्री भगवान दास, वृन्दावन

स्वयं में महाराज जी एक संस्था थे। इस भारत भूमि ने उन जैसे विरले ही रत्न पैदा किए हैं।

—श्री मोतीलाल वोरा, पूर्व राज्यपाल, उत्तरप्रदेश

19. एक सितारा हमें पृथिवी पर प्रगति एवं विकास के पथ पर रोशनी देकर निःसहाय छोड़ कर चला गया।

—महाराज अनन्त नारायण सिंह, रामनगर दुर्ग, वाराणसी

20. 06 मार्च 2006 को राष्ट्र ने संत संपदा खो दिया।

—मोरारी बापू, गुजरात

21. एक प्रकाश पुञ्ज इतिहास के पन्नों में विलीन हो गया।

—विद्यासागर शास्त्री—नई दिल्ली

22. जिस हृदय में श्रद्धा की ज्योति नहीं जली वह हृदय भी क्या हृदय है? वह सीप ही क्या है जिसमें मोती नहीं? इस गुरु तत्व से क्या प्राप्त होता है? यह गुरु भक्त ही जानते हैं।

जा घर गुरु की भक्ति नहीं, सन्त नहीं मेहमान
वो घर जम डेरा किया, जीवन भये मसान।

—नीलम-अनिल सहगल
पंजाबी बाग, नई दिल्ली

श्री राम जानकी मठ, अस्सी, वाराणसी
आश्रम वार्ता

1984–संत श्री सन्तोषदास का चित्रकूट जाकर महाराज जी को आश्रम सौंपने का निवेदन।

1986–पुनः महाराज जी के पास निवेदन तथा महाराज जी की स्वीकृति। श्री राजकुमार दास जी का आश्रम की व्यवस्था, मंदिर में पूजा-अर्चना आदि संभालने के लिए आगमन।

1990–आश्रम के जीर्ण भवन का पुनर्निर्माण प्रारम्भ।

1995–महंत सन्तोष दास जी का साकेतवास।

सम्पूर्ण विधि से उनका भण्डारा सम्पन्न।

1998–पूर्णरूपेण महाराज श्री का काशीवास।

मन्दिर एवम् आश्रम के शेषभाग का निर्माण प्रारम्भ।

2001–वसन्त पञ्चमी को रामदरबार, श्री हनूमान जी एवं गुरुदेव

श्री रामपदारथ दास जी वेदान्ती के विग्रह की प्रतिष्ठा।

2001–प्रतिवर्ष रासलीला, 5-6 बार भगवत्-भागवत् कथा ख्यातिलब्ध कथाकारों, संतो के द्वारा।

2004–श्री हनूमान जी के मन्दिर में अखण्ड दीपक प्रज्ज्वलित।

२००4–उज्जैन महाकुम्भ में श्री राजकुमारदास जी को महाराज जी के आदेशानुसार सभी अखाड़ों, सम्प्रदायों, श्री महन्तों के द्वारा "श्री पंजाबी भगवान नगर खालसा" का महन्त बनाया गया।

2005–अखण्ड श्री रामचरितमानस पाठ का शुभारम्भ।

2006–फाल्गुन शुक्ल सप्तमी दिनांक ०6 मार्च रात्रि 1.1० बजे श्री

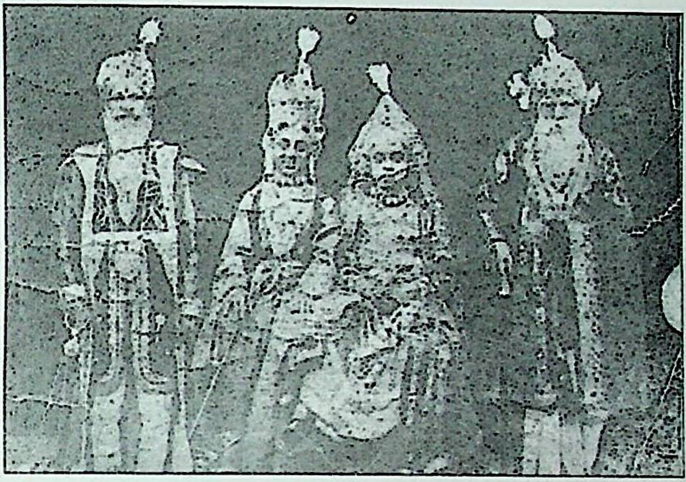
महाराज जी का लीला संवरण। श्री राजकुमार दास जी द्वारा अयोध्या, जनकपुर, गंगोत्री आदि स्थानों में वृहद् भण्डारा।

2007–प्रयाग अर्द्धकुम्भ में 02 जनवरी से 02 फरवरी तक प्रतिदिन रासलीला, अन्नक्षेत्र के द्वारा 2000 साधु–सन्तों, भक्तों, अतिथियों का प्रसाद ग्रहण आदि विभिन्न मांगलिक कार्य का सम्पादन।

26 जनवरी को महाराज जी के श्री विग्रह की प्रतिष्ठा एवं बृहद् भण्डारा।

17 फरवरी से 23 फरवरी तक श्रीमद्भागवत कथा का भव्य आयोजन।

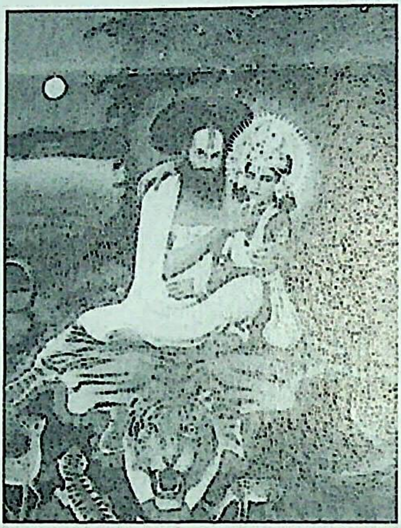
भविष्य में भी इसी तरह के मांगलिक कृत्य पूज्य श्रीमहाराज जी की प्रेरणा एवम् आशीर्वाद से महन्त श्री राजकुमार दास जी द्वारा कराए जाते रहेंगे।



श्रीधाम अयोध्या की रामलीला में श्रीरामरूप में दर्शन देते हुए श्रीमहाराज जी।



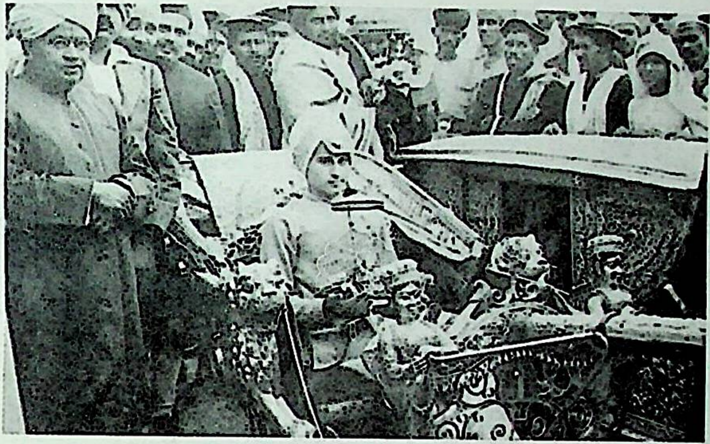
युगल छवि के झाँकी में विविध अलंकरणों से अलंकृत त्रिभुवनमोहन श्रीराघवेन्द्र (स्वरूप सरकार) के रूप में पूज्य महाराज जी।



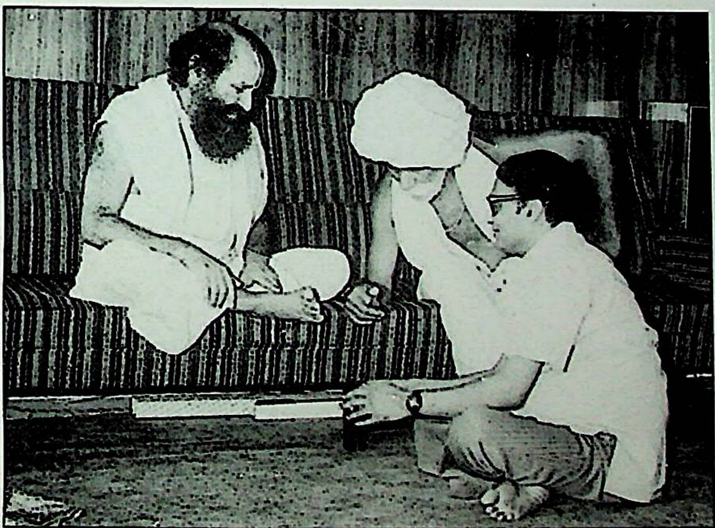
सन्तप्रवर श्री गंगादास जी महाराज (महन्त श्री छोटी छत्ता-जगन्नाथपुरी) की गोद में श्रीरामलला के स्वरूप में वात्सल्यभाव में विराजे श्री महाराज जी।



श्री सिद्ध किशोरी जी के साथ अत्यन्त अंतरंगतापूर्वक वरदमुद्रा में बायीं ओर विराजमान श्री महाराज जी।



राजकीय परिकर से परिवेष्टित श्री रामलला को गोद में धारण किए हुए राजकुमार रूप में राजकीय पालकी (अमावा स्टेट-पटना) पर आरूढ़ महाराज श्री।



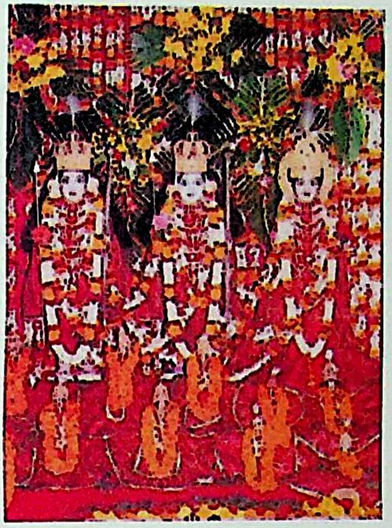
श्री राम खेलावन पाण्डेय (इलाहाबाद) के निवास पर महाराज श्री के चरणतल की विलक्षण रेखाओं का अवलोकनपूर्वक वैशिष्ट्य बताते हुए महाराष्ट्र के सामुद्रिक शास्त्र विशेषज्ञ सन्त।



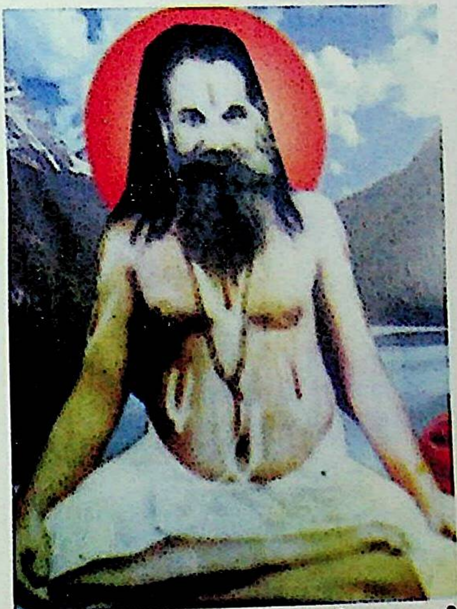
सहज वैराग्य एवं आत्मतोष से परिपूर्ण सुखासीन महाराज जी।



मानस की चौपाई पढ़कर अभिनव भाव के आस्वादन से चमत्कृत एवं आह्लादित श्री महाराज जी।



श्रीरामजानकी मठ; वाराणसी के सेव्य एवं परमाराध्य श्री सीतालक्ष्मण सहित श्रीराघवेन्द्र भगवान्।



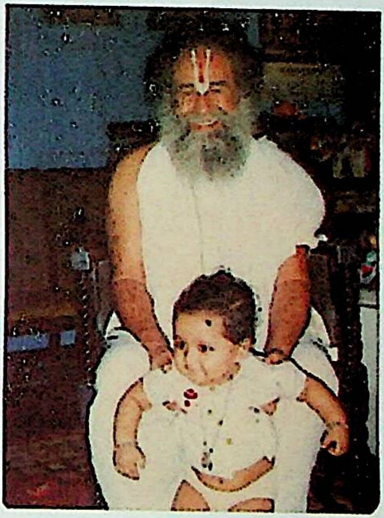
श्री रामभक्तिपरम्परा के शिखर पुरुष श्री महाराज जी के परमगुरु पं. रामवल्लभाशरणजी महाराज।



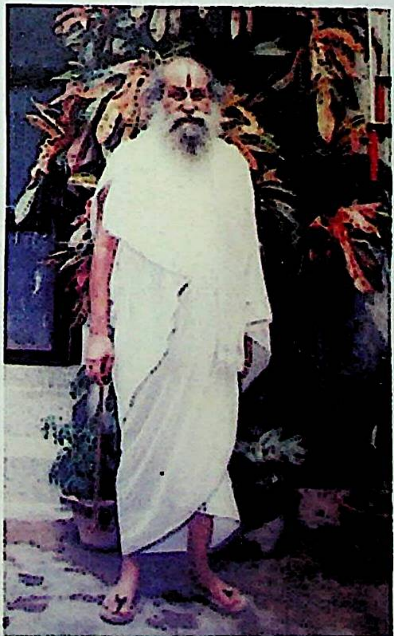
महाराज जी के वन्दनीय चरण श्री गुरुदेव पं० रामदारथ दास जी वेदान्ती।



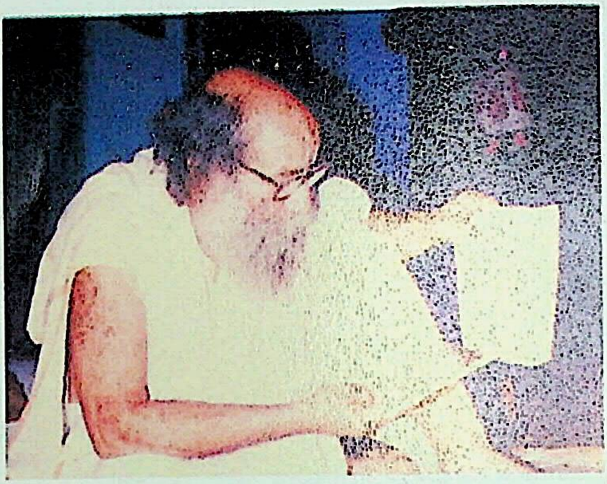
पटना में भक्त के यहाँ माला जपते आनन्द विभोर महाराज जी, पार्श्व में भक्त एवं श्री बालमुकुन्ददास जी (पीछे)



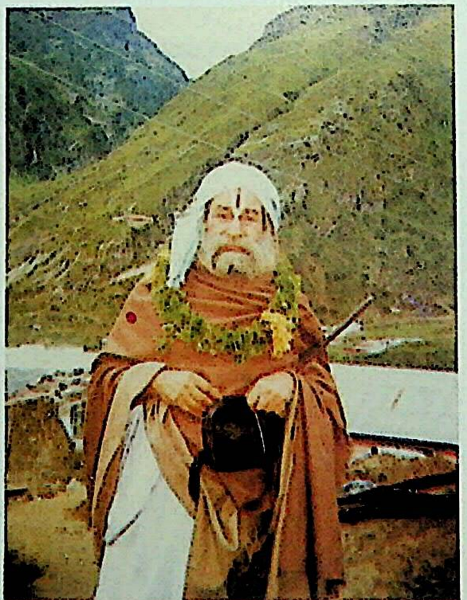
बच्चों को दुलारते हुए वात्सल्यभाव से ओतप्रोत महाराज श्री।



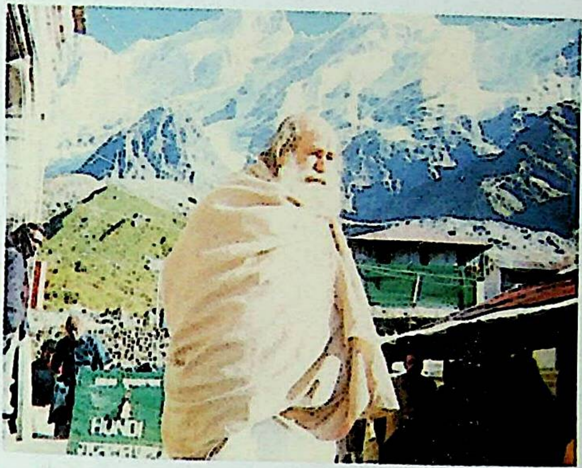
वाटिका के सौन्दर्य को निहारते, विचरण करते महाराज जी।



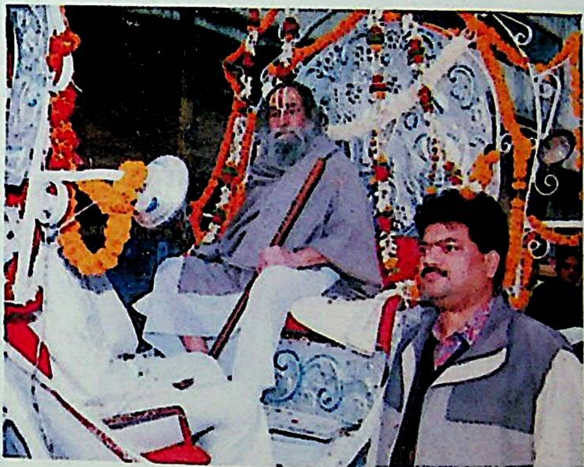
एकान्त में श्री भगवचित्र का दर्शन करते हुए गहनभाव में मग्न महाराज जी।



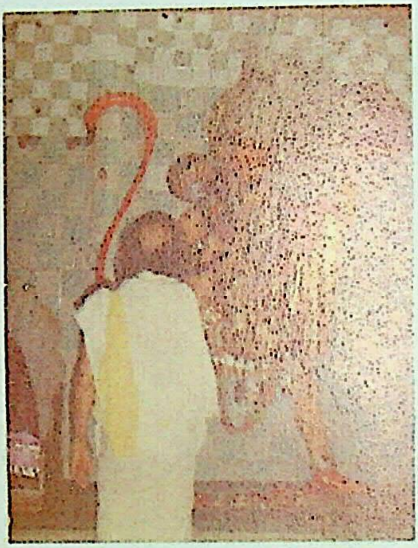
गंगोत्री के मनोरम प्राकृतिक छटा के मध्य श्री महाराज जी।



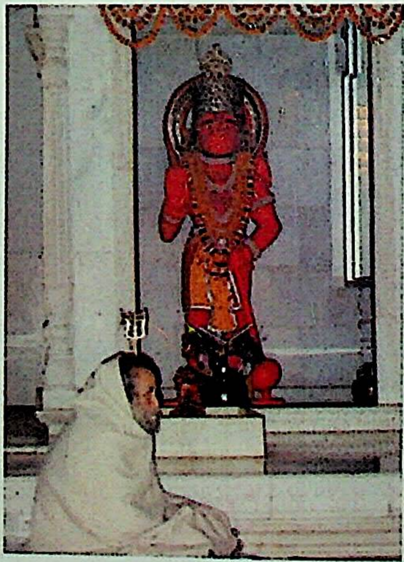
श्री बदरीनारायण भगवान् की अर्चना के अनन्तर मुख्यमन्दिर द्वार के बाहर कृतकृत्य पूज्य महाराज श्री।



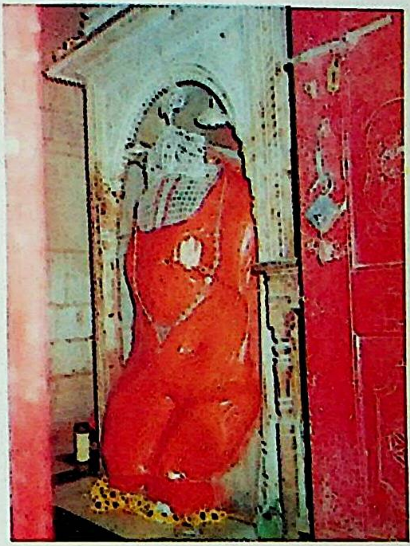
श्रीराम विवाहोत्सव ोभायात्रा (वाराणसी) में रथ पर विराजमान महाराज श्री। पा र्व में श्री मुन्नालाल अग्रवाल।



की सेवा में चँवर डुलाते हुए।



दास्य भाव से आसीन महाराज जी।



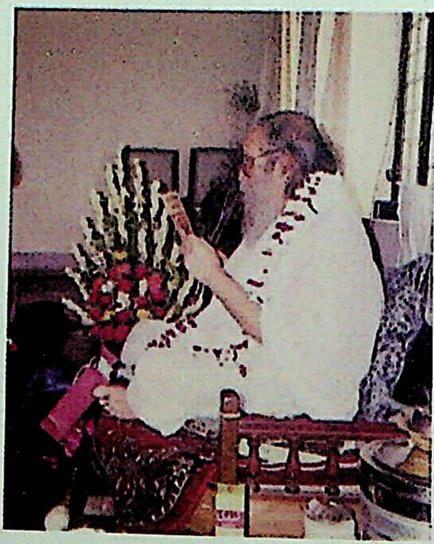
अखण्ड भगवन्नाम संकीर्तन से परिसेवित नाँदी के सिद्ध श्री हनुमान जी।



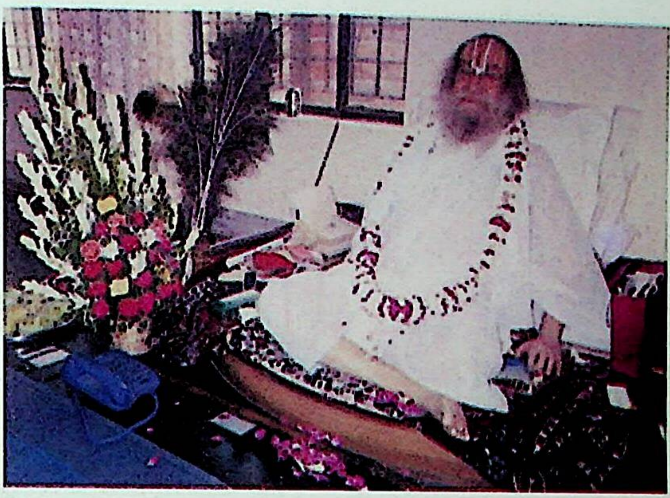
श्री विजयकुमार गुप्ता जी (वाराणसी) को अपने करावलम्बन से अग्रसर करते हुए महाराज श्री। पीछे हैं श्री रामलोचन दास जी।



रासलीला (वाराणसी) में दुग्धाभिषेक सम्पन्न करते हुए महाराज जी।



स्तुतिसंग्रह का ध्यानपूर्वक अवलोकन करते हुए महाराज जी।



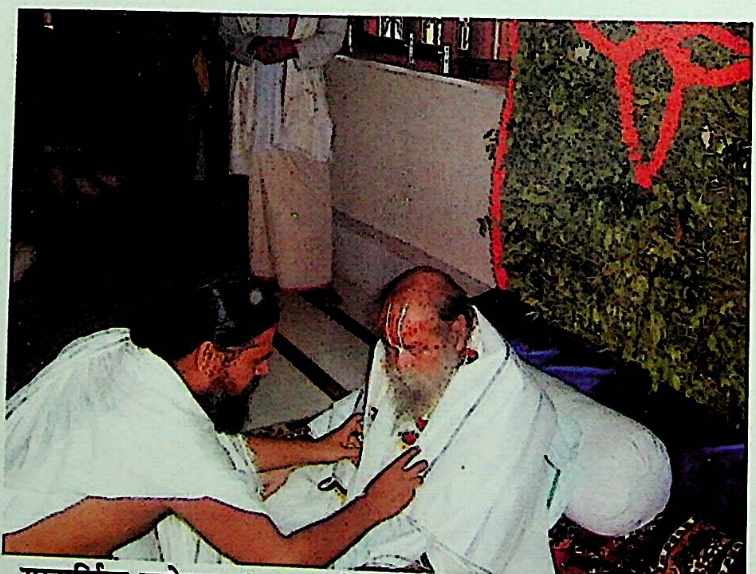
साधु सुलभ परमानन्द की मुद्रा में आसीन गुरुदेव जी।



सपत्नीक श्री विजयकुमार गुप्ता (वाराणसी) को दीक्षा के उपरान्त प्रसाद देकर कृतार्थ करते हुए श्री महाराज जी।



सद्गुरुदेव की सेवा में अपने परिकरों के साथ सन्नद्ध श्री महाराज जी।



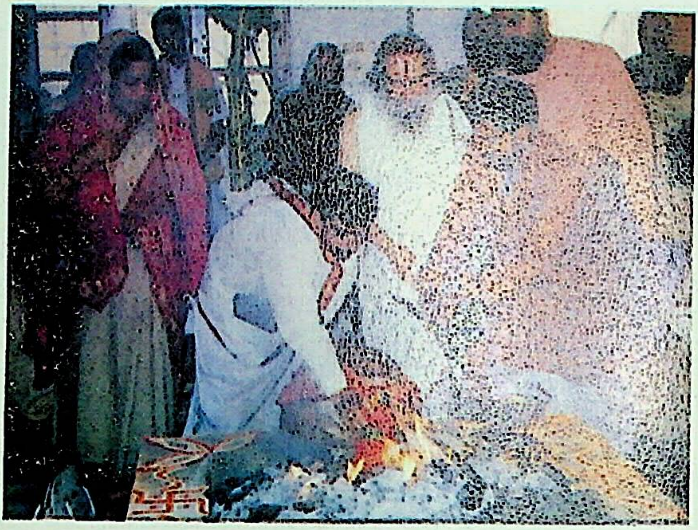
गुरुपूर्णिमा महोत्सव (वाराणसी) पर महाराज जी का पूजन कर आशीर्वाद प्राप्त करते हुए वर्तमान महन्त श्री राजकुमार दास जी।



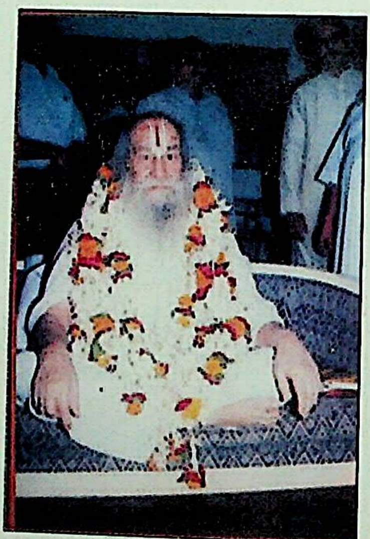
शिष्यों एवं भक्तों के मध्य विराजमान पूज्य श्री महाराज जी।



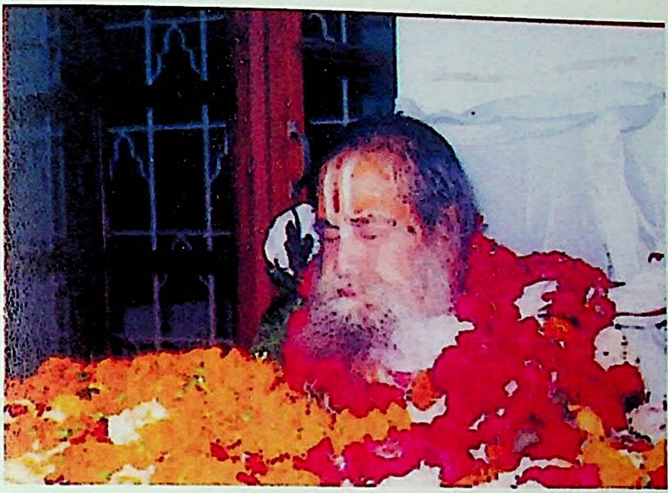
श्री महाराज की तपोभूमि श्री जानकीकुण्ड, चित्रकूटधाम आश्रम का विहंगम दृश्य।



श्रीराम जानकी मठ; वाराणसी आश्रम में मन्दिर प्रतिष्ठा के अवसर पर पूर्णाहुति करते श्री महाराजजी, दायीं ओर खड़े कृपापात्र शिष्य श्रीराजकुमार दास जी, रामलोचन दास जी, मुख्य यजमान सपत्नीक श्री विजयकुमार गुप्ता जी।



प्रतिष्ठा यज्ञ पूर्णकर आत्मतोष से परिपूर्ण महाराज श्री।



अनन्तशयनम्... श्री साकेतधाम के लिए महाप्रयाण।



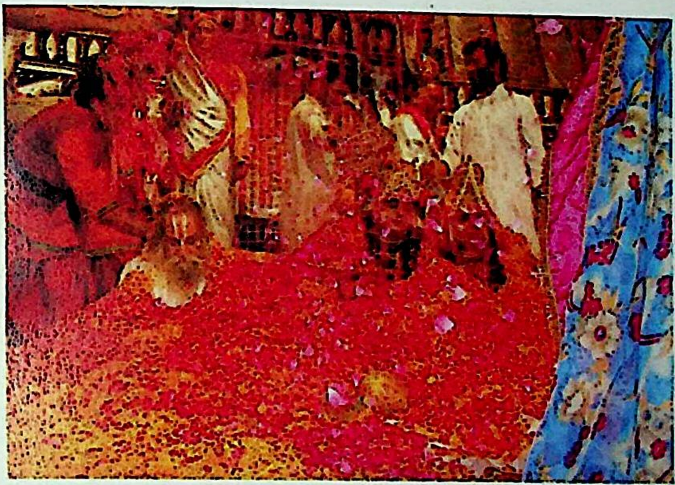
परमपदप्रस्थित महाराज श्री के चरम दर्शन एवं भावपूर्ण विदाई में उमड़ा भक्त समूह।



महाराज श्री के कृपापात्र उत्ताराधिकारी युवा शिष्य श्रीराजकुमार दास जी महाराज।



नमो नमः श्री गुरुपादुकाभ्याम्।



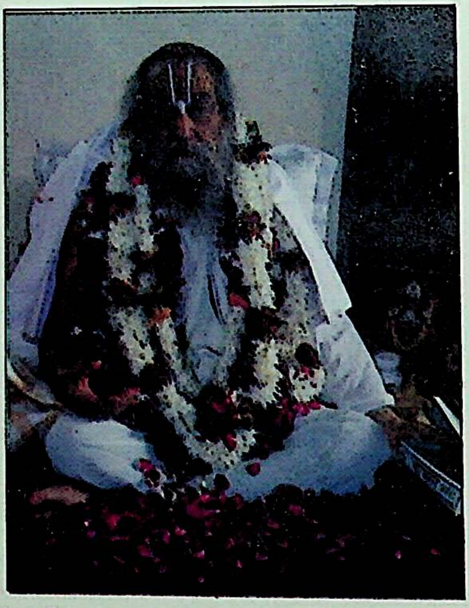
रासलीला (वाराणसी) में पुष्पालंकरण से आच्छन्न युगलसरकार एवं महाराज जी।



महाराज जी से वन्दनपूर्वक आशीर्वाद प्राप्त करती अपने पति के साथ श्रीमती आशा गुप्ता (वाराणसी)



मंगलकामना के साथ भगवत्प्रसाद वितरण करते हुए श्री महाराज जी।



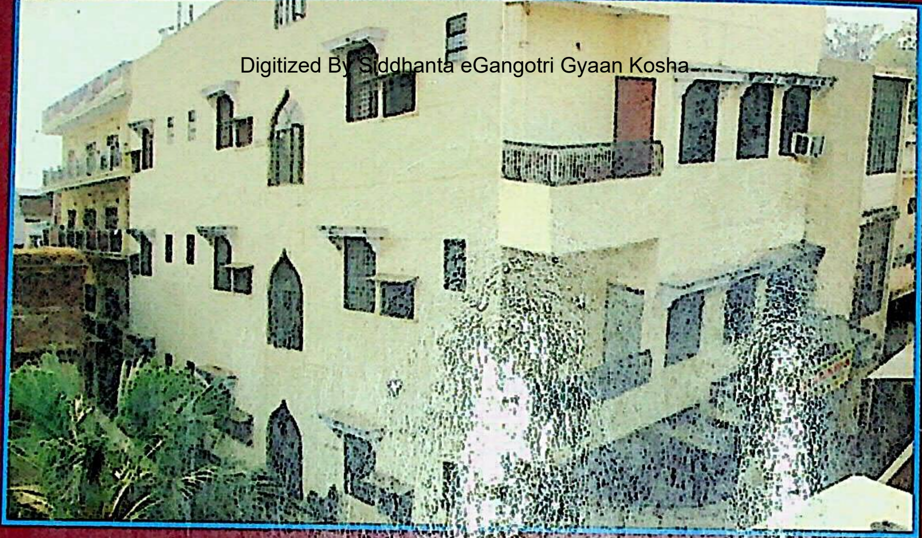
माल्यादि से अलंकृत भावमुद्रा में पूज्य महाराज जी।



डा० महानन्द झा

शिक्षा –नव्यन्यायाचार्य (पी–एच० डी०)
लब्धस्वर्ण पदक
कृति–सम्पादन–तर्कसंग्रह सर्वस्व
(भारतीय विद्यासंस्थान, वाराणसी)
लेखक – वैदिक दर्शन विमर्शः
(अभिषेक प्रकाशन, दिल्ली)
सम्प्रति –वरिष्ठ व्याख्याता–नव्यन्याय
श्री लालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रिय
संस्कृतविद्यापीठ कुतुबसांस्थानिक
क्षेत्र, नई दिल्ली–110016
फोन –011–26564003
26851252 Ext.–116
मो० 09899142004

E-mail : mahanandjha@indiatimes.com
Res.: Flat No. 206, 2nd Floor
Plot No. 1055/1
Hill View Apartment
Ward No.7, Mehta Chowk
Mehrauli, New Delhi-110030



श्री राम जानकी मठ, अस्सी, वाराणसी



अभिषेक प्रकाशन

5824, न्यू चन्द्रावल (शिव मन्दिर के पास) जवाहर नगर, दिल्ली-110007